सामने। मैहमाशाह बोल उठा, 'यह युद्ध मेरे लिये है महा-
राज! मेरे ही लिये आज रणथम्भोर पर आपत्ति आई है।
मुझे सम्राट के पास भेज दीजिये!'

हम्मीर की रग-रग में उत्तेजना दौड़ उठी। उन्होंने कहा,
नहीं यह कदापि नहीं हो सकता। राजपूत शरण में आये हुये का
कभी भी परित्याग नहीं करते। कल प्रभात होते ही सभी राजपूत
हाथ में तलवार लेकर घर से बाहर निकल पड़ेंगे, और रानियाँ
करेंगी, जौहर व्रत। कल प्रलय का दिन होगा प्रलय का। एक-
एक राजपूत शाही सेना का मन्थन करता हुआ समर भूमि में
सोयेगा। दुनिया देखेगी, और देख-देखकर चकित हो जायगी।

प्रभात का समय। चारो ओर वीर हम्मीर की जय।
आकाश काँप उठा। पृथ्वी हिल उठी। राजपूत शरणार्थी के
लिये केसरिया वस्त्र पहन कर युद्ध-भूमि में जा रहे हैं न!
सम्राट की सेना तैयार थी ही! रण भूमि गाज उठी। तलवारें
चमकने लगीं। मृत्यु के लिये निकले हुये राजपूत! उनकी प्रचंड
प्रगति को कौन रोक सकता था। वे अपनी विद्युत सरीखी
तलवार चमकाते हुये सम्राट की सेना को बहुत पीछे भगा ले
गये। सम्राट की सेना के पैर उखड़ गये। वह भाग चली
रणभूमि को छोड़ कर. उसके झण्डे, उसके सम्पूर्ण सामान,
राजपूतों के हाथ में लगे। राजपूत जय जयकार कर उठे।

राजपूत सेना जयनाद करती हुई यवन-झण्डों को लेकर
अपने दुर्ग की ओर चली। दुर्ग में रहने वाली रानियों ने
समझा, यवन जीत गये। फिर क्या? सब की सब चिता में
बैठकर जल गईं! महाराणा हम्मीर जब दुर्ग में पहुँचे, तब
उन्हें दिखाई पड़ा राख का ढेर। उन्हें दुःख हुआ, अत्यन्त दुःख।
उन्होंने अपना सिर काट कर शिव जी को समर्पित कर दिया।

भेज दीजिये। नहीं तो रणथम्भोर का दुर्ग सम्राट का कोप भाजन होगा।'

महाराणा की रग-रग में बिजली दौड़ गई। फूट पड़ी आँखों से चिनगारियाँ। उन्होंने क्रोध के स्वर में कहा, 'आप अपने सम्राट से कह दें दूत, मैं इस प्रकार की धमकियों से भयभीत होने वाला नहीं! मेहमाशाह मेरी शरण में आया है। चाहे कुछ भी क्यों न हो, मैं अब उसे अलाउद्दीन के पास न भेजूँगा।"

दिल्ली-पति सम्राट अलाउद्दीन। उसके चरणों पर सारा भारत लोट रहा था। हम्मीर की एक एक बात उसके हृदय में बर्छी मारने लगी। वह एक बहुत बड़ी सेना लेकर दौड़ पड़ा रणथम्भोर की ओर।

राजपूत भी हाथ में तलवार लेकर घर से निकल पड़े। [illegible] युद्ध हुआ, भयानक युद्ध। सम्राट की प्रबल सेना [illegible] दुर्ग के भीतर पहुँचना चाहती थी, किन्तु राणा पर [illegible] न पा सकी। सम्राट के सारे प्रयत्न निष्फल होते जा रहे थे। [illegible] दुर्भाग्य से हम्मीर का दीवान, [illegible] गुप्त रूप से सम्राट से जा मिला। उसने सम्राट से कहा, '[illegible] दुर्ग [illegible] अभिनन्दन [illegible]।

राजपूत लड़ रहे थे, प्राणों की बाजी लगाकर, जी जान की आशा छोड़ कर। दीवान ने महाराणा से कहा, 'महाराज दुर्ग की भोजन सामग्री समाप्त हो गई।'

महाराणा चिन्तित हो उठे।

रात का समय था। दुर्ग में सैनिक-[illegible] के साथ विचार विनिमय हो रहा था। दुर्ग की भोजन-सामग्री समाप्त हो गई। [illegible] बड़ा विकट प्रश्न था, सबके

छिपा दिया, और कहा, "रात को मैं यहाँ आकर कमरे का ताला खोल दूँगा, और तुम अन्धकार मे छिपकर भाग जाना!"

बगीचे का स्वामी उस व्यक्ति को कमरे मे बन्द करके घर गया। रात कुछ अधिक बीत गई थी। उसकी स्त्री ने कहा, अभी तक लड़का नहीं आया। दिन रहते ही घर से निकला था और अब तक न जाने कहाँ है?

'आता ही होगा!'—गृह-स्वामी ने उपेक्षा के साथ उत्तर दिया।

अभी उसकी बात समाप्त भी न होने पाई थी कि गाँव के तीन-चार व्यक्ति एक युवक का शव लिये हुये उसके द्वार पर आये और गृह-स्वामी को बुलाकर शव उसके सामने रख दिया।

गृहस्वामी ने प्रकाश मे उस शव को देखा। वह उसका एक मात्र पुत्र था। वह तड़प कर उस पर गिर पड़ा और करने लगा आर्तनाद। उसकी स्त्री भी बाहर निकल आई। सामने युवक पुत्र का शव। उसके अन्तर का कोना-कोना चीत्कार कर उठा। वह मूर्छित होकर गिर पड़ी भूमि पर। एक ही पुत्र था, आँखो की ज्योति।

स्त्री को लोग सँभालने लगे, गृहस्वामी को सांत्वना देने लगे। गृहस्वामी ने रोते-रोते कहा, किंतु समझ मे नहीं आता, यह कैसे मरा? शरीर पर घाव के भी चिन्ह तो नहीं हैं। बगीचा जाने के पूर्व मैं इसे बिल्कुल स्वस्थ छोड़कर गया था। फिर हो क्या गया इसे?

गाँव के एक मनुष्य ने सामने आकर कहा, 'मैंने अपनी आँखों से देखा है। गाँव के बाहर मैदान मे स्पेनिश केवेलियर फिर्के का एक व्यक्ति इसे पटककर इसकी छाती पर बैठा हुआ

सुरजन ने इसकी सूचना सम्राट को दी। दिल्ली की ओर भागता हुआ सम्राट पुनः लौट पड़ा, राजपूत फिर लड़े। किन्तु सबके सब मैहमाशाह के साथ रणभूमि में सो गये। रणभूमि में भी मैहमाशाह की लाश राजपूतों के लाश के नीचे थी।

वचन के लिये

स्पेन देश का एक छोटा सा गाँव। गाँव के मध्य में था, एक बगीचा। बगीचे में तरह-तरह के फूल-पौधे लगे हुये थे। बगीचे का स्वामी उन्हें प्यार करता, हृदय से, प्राणों से। प्रति दिन उन्हें अपने हाथों से सँवारता, पानी देता और भोजन देता। वे भी अपने स्वामी पर प्रसन्न होकर उसे फल-पुष्पों के रूप में सुन्दर भेंट प्रदान करते।

एक दिन संध्या का समय था। सूर्य की किरणें धीरे-धीरे अन्धकार के समुद्र में डूबती जा रही थीं। बगीचे का स्वामी, जो मूर जाति का था, बगीचे में टहल रहा था, फूलों की टहनियों को छू-छूकर उनसे उनका कुशल-क्षेम पूछ रहा था। सहसा एक मनुष्य ने बगीचे में प्रवेश किया। उसने बगीचे के स्वामी के चरणों पर गिर कर कहा, "मेरी रक्षा कीजिये। मैंने मूर जाति के एक युवक का वध किया है। लोग मुझे गिरफ्तार करना चाहते हैं। मुझे बचाइये!"

बगीचे का स्वामी आश्चर्य-चकित होकर उस व्यक्ति की ओर देखने लगा। वह थर-थर काँप रहा था, और कर रहा था [illegible] की याचना। बगीचे के स्वामी को दया आ गई। उसने उसे बगीचे में बने हुए घर के एक कमरे में

...ा] ...

...कती हो !—गृह-स्वामी ने कहा—किन्तु एक
...

...आश्चर्य हुआ । किन्तु उसने अपने मन के आश्चर्य
...र पूछा, "कौन सी शर्ते ।"
...चुप रहना पड़ेगा—गृह स्वामी ने कहा ।'
...भेद, एक रहस्य ! स्त्री के मन मे एक कौतूहल हुआ ।
...पने स्वामी की बात स्वीकार कर ली और चल पड़ी
...छे, पीछे । गृह स्वामी ने बगीचे मे जाकर कमरे का
...ोल दिया । अपराधी बाहर निकल आया ।
...स्वामी ने कहा, "दुष्ट ! तुमने जिसकी हत्या की है,
...रा पुत्र था ।"
...पराधी कॉप उठा । उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा
... उसने सोचा, अब तो मैं पकड़ा गया, और फिर पकड़े
... पर प्राण दण्ड ।'
...गृह स्वामी ने कहा, "किन्तु तुम आकुल न हो । मैंने तुम्हें
...वचन दिया है, मैं उसका पालन करूँगा । दूसरे कमरे मे
...च्चर बँधे हैं । तू एक खच्चर की पीठ पर सवार होकर रात
... रात यहाँ से भाग जा ।"
अपराधी का मस्तक नत हो गया । वह धीरे-धीरे उस दूसरे
...मरे मे खच्चर लाने के लिये गया । वह अभी खच्चर छोड़
...ही रहा था, कि गृह-स्वामी की स्त्री बोल उठी, इसने मेरे पुत्र
...की हत्या की है, मै इसे न जाने दूँगी ।'
'किन्तु तुमने मुझे वचन दिया है चुप रहने का'—गृह-
स्वामी ने कहा ।

था, और दोनों हाथों से घोट रहा था इसका गला। मैं जब तक इसके पास पहुँचा, वह उठकर भाग गया!"

'स्पेनिश केवेलियर फिर्के का मनुष्य! गृहस्वामी ने आश्चर्य-चकित होकर पूछा।'

"हाँ केवेलियर फिर्के का मनुष्य!—उस व्यक्ति ने उत्तर दिया—उसी ने इसका गला घोंटकर इसे मार डाला है। मैंने कुछ दूर तक उसका पीछा भी किया था।"

'क्या तुम बता सकते हो, वह किस ढङ्ग का था?—गृहस्वामी ने पूछा।'

'हाँ हाँ, क्यों नहीं—उस व्यक्ति ने उत्तर दिया—वह लम्बा सा था। सिर खुला था, और एक कोट पहने हुये था।'

गृहस्वामी चुप हो गया। उसकी समझ में आ गया कि अपराधी कौन है? वही जिसको उसने अपने बगीचे में छिपाया था।

उसने अपने हृदय को सँभाला, प्राणों को साहस प्रदान किया और अर्द्धरात्रि के पूर्व ही कर दी, उसकी अन्त्येष्टि क्रिया।

अर्द्धरात्रि का समय था। गाँव के सभी लोग अपने-अपने घर में सो रहे थे। पर गृहस्वामी और उसकी स्त्री की आँखों में नींद कहाँ! उनका आँख निकाल ला गई थी न! गृहस्वामी ने स्त्री से कहा तू यहीं रह। मैं बगीचे में जा रहा हूँ। आज की रात वहीं बिताऊँगा।"

'इतनी रात को और बगीचे में!— स्त्री ने आश्चर्य से कहा—मैं भी रहूँगी तुम्हारे साथ। यहाँ अकेले मुझे भय लगेगा।'

युवक का नाम वेन जाविन श्रोवन था। वह एक किसान का पुत्र था। वह शीघ्रता से उठकर खड़ा हो गया। सामने निरीक्षक। किन्तु भय नहीं, आकुलता नहीं। जैसे कुछ हुआ ही न हो। निरीक्षक की आँखों मे क्रोध बरस पड़ा। उसने कहा 'तेरी इस भूल से आज लाखों व्यक्ति अब तक मृत्यु के मुख में पहुँच गये होते।'

युवक का सिर नत हो उठा। किन्तु वह मौन रहा।

दूसरे दिन युवक फौजी अदालत मे विचारपति के सामने ा। विचारपति ने सारी बाते सुनकर न्याय किया, युवक को चौबीस घन्टे मे गोली मार दी जाय।

सारी सेना मे एक हलचल-सी मच गई। युवक के लिए प्रत्येक के मन मे पीड़ा उत्पन्न हो उठी। वह साहसी था, सच्च रित्र था, और था अपने देश पर प्राण देने वाला, किंतु युवक के मन मे न दुख, न पीड़ा। वह निश्चिन्त रहा, अविचल रहा। उसने सेनापति से प्रार्थना की, गोली से मरने के पूर्व मैं अपने पिता को पत्र लिखने की आज्ञा चाहता हूँ!

सेनापति ने आज्ञा दे दी।

युवक पत्र लिखने लगा।

'मुझे मृत्यु का भय नहीं है। मैंने सोचा था, मातृ-भूमि के लिये संग्राम मे लड़कर मरूँगा। किन्तु दुःख है कि पहरे मे सो जाने के कारण अब कुत्ते की मौत मरूँगा। मरने के पू मैं आपको वास्तविक बात बता देना चाहता हूँ, जिससे आ यह न समझें कि मैंने आपके नाम को कलङ्कित किया। आप ज्ञात होगा कि मैंने जे० सी० कार की माता से प्रतिज्ञा की मैं उसकी देख-भाल करूँगा। वह इधर बीमार था। जब से मे लौटकर आया, उस समय भी बीमारी के कारण अ

'मैं विवश हूँ—स्त्री ने उत्तर दिया—माता की आँखों के सामने पुत्र का हत्यारा और वह उसे यों ही जाने दे, यह नहीं हो सकता, मैं इसे पकड़वा दूँगी, शूली पर लटकवा दूँगी।'

तू भूलती है—गृह स्वामी ने कहा—तुझे पछताना होगा।

कुछ भी हो—स्त्री ने उत्तर दिया।

अपराधी खच्चर पर बैठ कर जाने ही वाला था, कि स्त्री चिल्ला उठी। चारों ओर से लोग दौड़ पड़े। अपराधी पकड़ लिया गया, किन्तु साथ ही लोगों ने देखा, गृह स्वामी का खून से लथपथ शरीर भूमि पर पड़ा है। उसने अपने आप अपने पेट में छुरा मार लिया था। स्त्री अब सचमुच पछता रही थी। मन ही मन अपने को कोस रही थी, किन्तु चुप थी। मानो गूँगी बन गई हो।

दूसरों के लिये

रात का समय था। युद्ध क्षेत्र में सैनिक सो रहे थे, किन्तु वह दे रहा था पहरा। उसे पहरे का ही काम सौंपा गया था। युवक था, जीवन और जागृति से परिपूर्ण था। किन्तु दिन भर काम करते-करते थक गया था। एक स्थान पर बन्दूक रख कर सो गया। कितनी भयंकर थी यह भूल। सिर पर शत्रु और पहरेदार गाढ़ी नींद में। क्षणमात्र में क्या से क्या हो सकता था।

संयोग की बात! पहरे का निरीक्षक घूमता-घूमता उधर आ पहुँचा। युवक सो रहा था। निरीक्षक ने उसकी बन्दूक हाथ में ले ली, और फिर कहा, 'ऐ सैनिक जवान! तू सो रहा है।

उसकी भी आँखों में आँसू आगये। किन्तु साथ ही वह विचार-
गई; मन ही मन कुछ सोचने लगी।

त का समय था। लड़की बिना किसी से कुछ कहे ही
कर घर से निकल पड़ी। कुछ ही देर के पश्चात् वह
गाड़ी पर बैठी हुई थी और जा रही थी न्यूयार्क में अब्रा-
लिंकन के पास।

न्यूयार्क में अब्राहिम लिंकन का भवन। अबोध बालिका
कर द्वार पर खड़ी हो गई। सेवक ने सूचना दी, 'श्रीमान्!
क छोटी-सी लड़की आप से मिलना चाहता है।'

सरल हृदय दयालु अब्राहिम लिंकन स्वयं बाहर निकल
। उन्होंने प्रेम प्रकट करते हुए लड़की से पूछा, "तू क्या
ती है?'

अबोध बालिका बोल उठी, 'मेरे भाई को बचाइये। चौबीस
एटे में उसे गोली मार दी जायगी।'

अब्राहिम लिंकन को इसके पूर्व ही इस घटना की खबर
मिल चुकी थी। उन्होंने उत्तर रूप में कहा, 'तुम्हारे भाई ने
बड़ी भूल की है। उसकी इस असावधानी से लाखों सैनिक
मृत्यु के मुख में चले गये होते।'

बालिका ने कहा, मेरे भाई ने जो असावधानी की है, वह
जान-बूझ कर नहीं की है। उसने दूसरे के लिए कष्ट उठाया
था। दूसरों के सुख के लिए कष्ट उठाने ही के कारण वह अधिक
थक गया था। इसीलिए रात मे पहरा देते समय सो गया।'

अब्राहिम लिंकन विचार-मग्न हो गये। कुछ देर के पश्चात्
बोले, 'तुम्हारी इस बात का प्रमाण क्या है लड़की?'

लड़की ने कोट की जेब से पत्र निकाल कर लिंकन को दे दिया। लिंकन ने पत्र पढ़कर लड़की से कहा, 'बेटी! अब तू अपने घर लौट जा। अपने पिता से कहना, कि उसके पुत्र की देश को अभी बहुत आवश्यकता है। देश के ऐसे युवक यदि गोली से मार दिये जायँगे, तो फिर देश में रहेगा कौन?'

लड़की लौट कर अपने घर चली गयी। लिंकन ने शीघ्र ही रण-क्षेत्र में आज्ञा-पत्र भेजा, 'बेन जामिन का अपराध क्षमा किया जाता है। उसे चाहिये कि वह शीघ्र न्यूयार्क आये।'

दूसरे दिन प्रातःकाल बेन जामिन न्यूयार्क में प्रेसिडेन्ट लिंकन के सामने था, और लिंकन उसके कन्धे पर लेफ्टिनेंट का पद-चिन्ह बाँधते हुए कह रहे थे, जो सैनिक दूसरों के दुःख के लिए कष्ट सहता है, और बिना किसी प्रकार की शिकायत किये हुये ही मरने के लिए तैयार हो जाता है, वह देश का वास्तविक कहलाना चाहता है।"

धन्य है युवक का साहस, और लिंकन का सौजन्य!

—।—

। उनके पूर्व पुरुषों ने जननी जन्मभूमि के लिए अपने रक्त
। दान दिया था। उन्हीं का रक्त विजय सिंह की रगों में भी
लहरा रहा था, प्रवाहित हो रहा था।

विजयसिंह वास्तव मे विजयी सिंह के सदृश थे। समर
भूमि मे उनके समान कोई वीरत्व न दिखा सकता। वे सब के
आगे रहते, शत्रुओं के मन को भी आश्चर्य मे डाल देते। इसके
अतिरिक्त उनमे एक और भी बडा गुण था—प्रभु भक्ति का।
नवाब के लिए सदैव अपने प्राणों का उत्सर्ग करने के लिए
तैयार रहते। कई बार वे अपने प्राणों को संकट मे डालकर
नवाब को युद्ध क्षेत्र से बचा लाये थे। इसीलिए तो नवाब उन्हें
अपने अन्तर मे छिपा कर रखता था।

विजयसिंह का एक पुत्र था, बिल्कुल देव शिशु के सदृश
सुन्दर। साहस और शक्ति उसकी आकृति पर खेलती थी।
आँखों से टपकती थी, करुणा। स्वाभिमान रग-रग मे बसा
हुआ था। कोई अपमान की बात करता तो करुणा का आवरण
धारण करने वाली आँखे चट लाल हो जातीं और उगलने
लगतीं अङ्गार; किन्तु जन्म हुआ था उसका अत्यन्त संकट के
समय मे। उस समय मे, जब विजयसिंह निराश्रित थे, और
थे भिखारी के सदृश।

उन दिनो विजयसिंह आश्रय-सून्य भिखारी की भाँति दर-
दर भटक रहे थे। यदि चाहते तो विनय-प्रार्थना करके कहीं न
कहीं आश्रय खोज लेते, किन्तु वे राजपूत थे, स्वाभिमानी थे।
उन्होने निश्चय किया, "भिखारी के रूप मे दर दर भटकूंगा,
दाने-दाने के लिए मरूँगा, किन्तु दूसरों के सामने मस्तक न
झुकाऊँगा। पेट के लिए दूसरों के सामने मस्तक झुकाने

अच्छा तो मृत्यु है। मैं भी मृत्यु का अनुसन्धान करूँगा, स्वाभिमान से मस्तक को ऊँचा करके उसे अपने पास बुलाऊँगा।'

विजय सिंह भटकने लगे। उनके साथ में थी, उनकी जीवन सहचरी।

दो-तीन दिन से खाने के लिए एक मुट्ठी अन्न भी न मिला था। एक पर्वत के ऊपर झरना के किनारे विजयसिंह बैठे थे। उनकी गोद में मस्तक रख कर सोई हुई थी, जीवन सहचरी। असह्य [illegible] से घिरी हुई। विजय सिंह का मन रो उठा। जीवन में यह पहला दिन था जब उनके मन ने दुर्बलता का अनुभव किया था। [illegible] जीवन सहचरी से कुछ न कहा। उन्होंने अपने को सम्भाला। आँखों के उमड़े हुए आँसू को भीतर ही भीतर सुखाकर सूनी आँखों से स्त्री की ओर देखा।

जीवन संगिनी धीरे-धीरे साथ छोड़ रही थी। उसने अपने गोद के रत्न को सौंपते हुये कहा, 'इसे सँभालो। मैं अब जाती हूँ।'

गई, किन्तु विजयसिंह के मन मे अभी स्त्री की स्मृत बराबर ज्यों की त्यों बनी ही रह गई। विजय सिंह ने अपने पुत्र का नाम रक्खा, जालिमसिंह।

शिशु जालिम को लेकर विजय देश देश में परिभ्रमण करने लगे। मार्ग मे विपत्तियों और बाधाओ की कांटेदार झाड़ियाँ विजय सबको साहस के साथ लाँघते जा रहे थे, पार करते जा रहे थे। दिनों के साथ ही साथ जालिम भी धीरे-धीरे बढ़ रहा था। विजय उसे सिखाते थे, 'शरीर क्षणभगुर है। ससार भी क्षणभगुर है। मनुष्य को अपना कर्त्तव्य करना चाहिये, कर्त्तव्य पिता के इस मत्र को शिशु लिखता जाता था, अपने मन पर अपने हृदय-पटल पर। बालकपन ही मे वह भली-भांति समझ गया कि वीरता उसका जीवन है, और कर्त्तव्य पालन है उसका धर्म।

विजय सिंह के भाग्य ने फिर पलटा न खाया। आँखों के सामने था, सुकुमार जालिम का भावी जीवन। विजय ने विवश होकर नवाब के सेनापति का पद स्वीकार कर लिया, किन्तु कभी नवाब के सामने मस्तक न झुकाया, अपने सम्मान को न बेचा।

एक दिन रात्रि का समय था। विजय ने सकरुण स्वर मे जालिम से कहा, बेटा जालिम! तुम्हारा दुखी बाप तुमसे एक वस्तु चाहता है। क्या दे सकोगे?

जालिम आँखो मे आश्चर्य भर कर विजय की ओर देखने लगा।

विजय ने पुन· उसी स्वर मे कहा, 'बोलो बेटा, जालिम चुप क्यो हो? कुछ भी तो उत्तर दो, हाँ या ना।'

जालिम पिता के चरणों पर गिर पड़ा। कहने लगा, 'आप इस बात को कहकर क्यों हमें दुखी कर रहे हैं पिता जी! यह शरीर आपका है, मन आपका है, हृदय आपका है। आप जो आज्ञा देंगे, उसका मैं सहर्ष पालन करूँगा।'

"अच्छा बेटा, तो यह प्रतिज्ञा करो—विजय ने कहा—आत्म अपमान कभी सहन न करूँगा और उसके लिये जीवन का उत्सर्ग कर दूँगा!"

ऊपर था आकाश, नीचे थी पृथ्वी। जालिम ने दोनों को सम्बोधित करके कहा, 'आत्म अपमान कभी सहन न करूँगा, और उसके लिये जीवन तक उत्सर्ग कर दूँगा!'

विजय ने जालिम को गोद में लेकर आँखें बन्द कर ली। आँखों से गिरने लगे, आनन्द और सन्तोष के आँसू। उन आँसुओं का रहस्य एक वीर राजपूत को छोड़कर संसार में दूसरा जान ही कौन सकता है?

बाजे और उसी के द्वारा कर रही थी युद्धभूमि आवाहन। पिता पुत्र, दोनों ममता की वेदियों को काटकर उसी ओर दौड़ पड़े, आँधी की तरह, बिजली की भांति।

गिरिया का सुविस्तृत मैदान। दोनों ओर की सेनायें आमने सामने डट गईं। ऊपर अन्तहीन नीला आकाश, नीचे सुविस्तृत हरित मैदान। मध्य मे गंगा जी की उज्वल धारा। किनारे किनारे फल पुष्पो से लदी हुई वृक्षो की पत्तियाँ। उन्हीं पर कर रहे थे, अनेक प्रकार के पक्षी कल गान। अपूर्व दृश्य था। आशा नहीं थी, यहाँ रक्त पात होगा, एक मनुष्य दूसरे का गला काटेगा, किन्तु वहाँ युद्ध हो रहा था, युद्ध के बाजे बज रहे थे। पक्षी उड़ते फिर रहे थे, पृथ्वी लाल होती जा रही थी। देखने वाले आश्चर्य करते थे, पर वीरो की तलवारें चलती ही जा रही थीं।

जालिम अपने पिता के साथ था। वह भी अपनी तलवार चमका रहा था, शत्रुओं को धराशायी कर रहा था। एक छोटे से बालक मे इतनी वीरता। शत्रु दांतों तले उँगली दबाते थे।

विजयसिंह को विजय की आशा थी। वे असीम साहसी थे, असीम शक्तिशाली थे; किन्तु उधर थी अधिक सुशिक्षित सेना। उस पर विजय प्राप्त करना कठिन था, अधिक कठिन। अलीवर्दी खाँ स्वयं उसका संचालन कर रहे थे। उसके समान वीर और सहृदय नवाब इतिहास के पन्नों मे बहुत कम मिलते हैं।

जालिम को ज्ञात हो गया, इस बार युद्ध-क्षेत्र से पिता को न ले जा सकूँगा। उसका हृदय कम्पित हो उठा, प्राणों मे व्याकुलता नाच गई, किन्तु वीर था, वीर की सन्तान था। अपने को सँभाल कर पुनः युद्ध करने लगा।

विजय ने कहा, 'बेटा जालिम, यदि मैं युद्ध में काम आऊँ, तो देखना विधर्मी मेरे शव को नष्ट न करने पायें।' जालिम ने सजल आँखों से विजय की ओर देखा। विजय प्रलय की भाँति शत्रु का संहार कर रहे थे। जालिम भी चुपचाप उसी में योग देने लगा, उनकी सहायता करने लगा।

सन्ध्या का समय था। आकाश लाल हो गया था। पृथ्वी भी लाल थी। ऐसा ज्ञात होता था, मानों नीचे से लेकर ऊपर तक लाल सागर लहरा रहा हो। युद्ध चल रहा था। सहसा शत्रु की तलवार से आहत होकर विजय भूमि पर गिर पड़े और हो गये प्राणशून्य। जालिम झट घोड़े से कूद कर पिता के शव के पास खड़ा हो गया। उस समय उसके मन में थी पिता की यह बात, 'देखना मरने पर विधर्मी मेरे शव को नष्ट न करने पायें।'

क देखने लगा। उसे ऐसा ज्ञात हुआ, मानों उसके वीर पिता
ज्योतिर्मय रथ पर चढ़ कर स्वर्ग की यात्रा कर रहे हैं।
जालिम ने भी अपने पिता का मन्त्र ग्रहण किया। उसने
कभी किसी के सामने अपना मस्तक नहीं झुकाया। वह
पने देश के लिये अपनी मातृभूमि के लिये सदैव प्राणों को
त्सर्ग करने के लिये तैयार रहता था। उसे आत्मसम्मान
प्यारा था। वह सुख को ठुकरा कर उसे खोजता फिरता था।
इसीलिये लोग कहते थे कि जालिम शरीर और मन, दोनों
राजपूत है, राजपूत की सन्तान है।

जालिम की वीरता किसी को नहीं भूलती। एक दिन
गिरिया के समर-क्षेत्र में उसने जो वीरता दिखाई थी, आज
भी वह कीर्तिसंगीत के रूप में लोगों के मुख से फूट रही
है। आज भी उस मैदान को लोग कहते हैं, जालिम सिंह
का मैदान।

सौन्दर्य का पारखी

मथुरा नगरी में उसकी एक छोटी-सी दूकान थी, बहुत
छोटी सी। कुछ थोड़ी-सी आवश्यक वस्तुयें रक्खी रहतीं।
कदाचित् ही कभी दो चार से अधिक ग्राहक आते हों। ग्राहक
आते हों या न आते हों, किन्तु उस ओर से निकलने वाले
अधिकांश व्यक्ति उसे सहानुभूति की दृष्टि से देखते थे। कभी
कभी किसी के मुख से 'आह' के साथ यह एक बात भी निकल
जाती, एक दिन वह था, और एक दिन यह। महल झोपड़ा
बन गया, थोड़े ही ... [illegible]ओ देखते देखते !'

उन्मत्त की भांति, न्यायमंच से उठ कर अपने कमरे के भीतर भाग गया। नौकर, चाकर, सिपाही, सैनिक सभी अवाक! किसी की समझ ही मे कुछ न आया। सब आपस मे तरह-तरह की कल्पनायें करने लगे। उधर निकोलस ने कमरे के भीतर नौकर को बुला कर उसके सामने चाँदी के कुछ सिक्के फेंक दिये। उसने कहा, जाओ मेरे लिये शराब, गोश्त और एक घोडा लाओ। घोडा ऐसा लाओ, जो एकजिस्टर में सब से तेज हो।

लोग तरह-तरह की कल्पनाये कर रहे थे। कुछ देर के पश्चात् लोगो ने देखा कि निकोलस हवा से बातें करने वाले घोड़े पर चढ़ कर लन्दन की ओर भागा जा रहा है। उन दिनों रेलों का प्रचार नहीं हुआ था। निकोलस को इस रूप में जाते हुये देखकर लोग और भी अधिक आश्चर्य-चकित हो उठे। सभी आकुल थे, परेशान थे। पर निकोलस को किसी की चिंता न थी। उसे स्वय अपनी भी चिन्ता न थी। वह अपने मित्र वेक को बचाना चाहता था और इसीलिये लन्दन मे क्रामवेल के पास जा रहा था। दो रात और एक दिन वह घोड़े की पीठ ही पर रहा। इतनी लम्बी यात्रा मे वह तीन बार रुका था और वह भी केवल घोड़ा बदलने के लिये।

सवेरा हो रहा था। सूरज की किरणें निकल आई थीं। लन्दन मे क्रामवेल के कमरे मे कीचड़ से सना हुआ निकोलस खड़ा था। उसके सारे कपड़े लथ-पथ थे। क्रामवेल ने मिलने वाले कमरे मे पहुँच कर आश्चर्य से उसकी ओर देखा और आश्चर्य ही से उसके मुख से निकल पडा, कौन, न्यायाधीश निकोलस! यहाँ, इस समय ऐसी दशा मे !!

निकोलस ने कहा, हाँ, मैं हूँ, न्यायाधीश निकोलस! मुझ

बैठा ही था, कि उसकी दृष्टि सामने सड़क की पटरी पर जा पड़ी। उसने देखा, सौदन्र्य से लसी हुई एक अद्‌भुत रमणी बड़ी चाह से उसी की ओर देख रही है। उपगुप्त उसकी ओर एक दृष्टि फेंक कर पुनः अपने काम में लग गया।

रमणी सड़क की उस पटरी से जब आगे चली, तब उसके हृदय में एक कॉटा-सा चुभा हुआ था। वह अपने मन में अपने हृदय में, अपने अन्तर के कोने-कोने में जहाँ भी देखती, उपगुप्त को ही पाती। उसका मन लुट गया था, प्राण बिक गये थे। वह खोई हुई-सी घर पर लौटी। उसे अपनी सुन्दरता का अधिक अभिमान था। पर आज उसका सारा अभिमान उपगुप्त के चरणों पर लोटने के लिये आकुल हो रहा था।

वह रमणी थी, एक सुप्रसिद्ध वेश्या। नाम उसका वासवदत्ता था। वह रूप और वैभव की रानी थी। बड़े बड़े राजा, बड़े-बड़े सेठ, उसकी छाया तक के लिये तरसते थे, प्राण देते थे। हजारों लाखों उसके लिये आँखे बिछाये रहते थे। किन्तु उसे किसी की चिन्ता न थी। वह रूप और यौवन के मद में इठलाती चली जा रही थी। पर उपगुप्त के सुगठित शरीर ने उसे रोक लिया। उसका सारा अभिमान चूर-चूर हो गया। वह उपगुप्त के लिये आकुल हो उठी, बहुत ही आकुल!

रात का समय था, वासवदत्ता आकुलता के साथ करवटें बदल रही थी। उसे अपने हृदय में और हृदय के बाहर चारों ओर उपगुप्त ही की आकृति दिखाई दे रही थी। उसके विषयी मन में रह-रह कर उपगुप्त के लिये भीषण उफान उत्पन्न हो रहा था। जब उसके मन में किसी प्रकार से सन्तोष न हुआ तब वह उठकर चारपाई पर बैठ गई, और लिखने लगी उपगुप्त को पत्र। उसने पत्र में लिखा:--

पर दूकान के मालिक को इसकी चिन्ता ही नहीं थी। वह सुख दुःख की सीमा को पार करने वाला मनुष्यों में देवता था। उसने पहले राजमहल देखा था और, अब झोंपड़ा भी देखा। सोने चाँदी के चमकदार बरतनों ने कभी उसकी आँखों में झलक पैदा की थी, किन्तु अब तो काली और सूनी हाँडियों का ही उसकी आँखों के सामने राज्य है। पर पहले जैसा उसका मन था, वैसा ही अब भी है। पहले ही की भाँति वह अब भी मनुष्यों की सेवा करता। कौड़ी-कौड़ी के लिये मुहताज रहता, किन्तु अपनी मानवता का परित्याग न करता। वही, वही, मनुष्य का श्रेष्ठ राजपुत्र, जिसके जीवन की सुन्दर कहानियाँ आज भी इतिहास के पन्नों पर उगते हुये सूर्य की सुनहली किरणों की भाँति खेल रही हैं।

पश्चात् आह की एक लम्बी साँस लेकर बोल उठी, कैसे
ताऊँ उपगुप्त, क्या चाहती हूँ ! देखो, एक बार मेरी आँखों
की ओर देखो ! फिर तुम्हें मालूम हो जायगा, कि मैं तुमसे
क्या चाहती हूँ ?'

'देख रहा हूँ वासवदत्ता तुम्हारी आँखों की ओर ! उपगुप्त
ने उत्तर दिया तुम्हारी आँखें वासना की आग जलाकर मेरा
इन्तजार कर रही हैं । पर वासवदत्ता, वे दूसरे ही पतिंगे होंगे
जो इस प्रकार की वासना की आग मे जलते होंगे । मेरे लिये
यह असम्भव है बहुत असम्भव ।

ऐसा न कहो उपगुप्त !—वासवदत्ता ने उसकी ओर देखकर
कहा—मेरी ओर देखो, मेरे रूप और सौन्दर्य को देखो । बड़े-
बड़े राजा जिसपर अपने प्राण देते हैं, वही आज तुम्हारे द्वार
पर तुम्हारे चरणों पर लोट रही है ।

पर मुझे तो तुम्हारे शरीर मे कुछ भी सौन्दर्य नहीं दिखाई
दे रहा है । वासवदत्ता !—उपगुप्त ने कहा—यदि तुम्हारे शरीर
मे सचमुच सौन्दर्य होता तो मैं तुम्हारे प्रेम को स्वीकार भी
कर लेता ।

वासवदत्ता आँखे फाड़ कर उपगुप्त की ओर देखने लगी ।
उपगुप्त उसकी मतवाली आँखों के सम्मुख भी वज्र-शिला की
भांति निश्चल रूप से स्थिर था ।

'तो क्या मुझ मे सचमुच सौन्दर्य नहीं है उपगुप्त !'

'मुझे तो नहीं दिखाई देता वासवदत्ता !"

"मुझे तो नहीं दिखाई देता वासवदत्ता ! क्या सौन्दर्य न सही, मेरे पास वैभव और ऐश्वर्य तो है ! क्या
तुम्हें उसका बिलकुल मोह नहीं है ?"

,वासवदत्ता ने दो बूँद आँसू गिरा कर आँखे बन्द कर लीं। क्या कोई कह सकता है, कि वासवदत्ता के उन आँसुओं मे क्या था ?

इतिहास का कथन है, कि वह उस समय पश्चात्ताप और ा की मूर्ति बनी हुई थी।

नीम की याद में

एक सहस्र वर्ष पूर्व की बात है। आस्ट्रिया की राजधानी ीयना एक छोटा-सा गाँव था। छोटे-छोटे घर थे, छोटी छोटी ालियाँ थीं। चारो ओर दीवाल की रेखा खिची हुई थी। उसी रेखा मे बाहर वन की गोद मे एक छोटा-सा मन्दिर था। मंदिर के पास एक झोपड़े मे एक साधु भी रहता था। मन्दिर के पास के पेड़ों की डालियाँ बड़ी श्रद्धा से मन्दिर की छत को चूमती थीं। गाँव वाले भी सन्ध्या सबेरे मन्दिर मे एकत्र होते, और प्रभु के सामने घुटने टेक कर उसका गुणानुवाद करते। साधु को इससे सुख मिलता, बहुत बड़ा सुख।

पर संसार तो परिवर्तनशील है न। धीरे-धीरे गाँव की आबादी बढ़ने लगी। गाँव बड़ा होने लगा। गाँव के साथ की गाँव में मकान और गलियाँ भी बड़ी होने लगीं। पहले जब गाँव छोटा था, तब लोग बड़े मजे मे उस छोटे से मन्दिर मे एकत्र होकर प्रभु की प्रार्थना कर लिया करते थे। किन्तु अब जब गाँव बड़ा हो गया था, लोगो का मन्दिर मे प्रार्थना करने मे कष्ट मालूम होने लगा। लोगों ने सोचा, अब मन्दिर को बड़ा ना चाहिये।

बोल उठा, 'ये मनुष्य ऐसे ही स्वार्थी होते हैं ! भाई सदियों से मेरी छाया में आराम करते चले आ रहे हैं, किन्तु जब इन्हें ेरे स्थान की आवश्यकता हुई तब मेरी जड़ पर कुल्हाड़ी मारते हुये रञ्च मात्र भी इनका हृदय कम्पित न होगा। ये स्वार्थी जानवरों से भी गये बीते हैं, हृदय-हीन हैं।'

नीम झट बोल उठा, 'नहीं, नहीं भाई ऐसा न कहो। मुझे तो विश्वास नहीं होता कि ये स्वार्थी होंगे। ये ही तो वे लोग हैं, जो प्रतिदिन ईश्वर के सामने घुटने टेक कर उसकी प्रार्थना करते हैं, उससे अपने अपराधों और पापों की क्षमा माँगते हैं। ईश्वर की प्रार्थना करने वाला कभी स्वार्थी और हृदय-ही नहीं हो सकता।'

ओक चुप हो गया।

कुछ दिनो के पश्चात् मन्दिर के आस-पास के पेड काटे जाने लगे। उसकी डालियाँ छाँटी जाने लगीं। चीत्कार से वन प्रतिध्वनित हो उठा। ओक ने नीम से कहा, मैंने जो कहा था, वह सच निकला न।

नीम गम्भीर बन कर सोचने लगा, क्या सचमुच मनुष्य स्वार्थी और हृदय-हीन होते हैं ?

एक दिन प्रभात का समय था। मजदूर पेड़ों की डालियाँ छाँटने मे लगे थे। साधु बड़े दुख से चीत्कार करके गिरती हुई उन डालियो की ओर देख रहा था। उसने आह की एक साँस लेकर मिस्त्री से कहा, 'मिस्त्री जी, इसमे सदेह नहीं, कि मन्दिर अधिक सुन्दर बनाया जा रहा है, किन्तु आप देख रहे हैं न, कि मेरे कुटुम्बियो की किस प्रकार हत्या की जा रही है!'

मिस्त्री साधु की इस बात पर हँस पड़ा।

"बिल्कुल नहीं वासवदत्ता, बिल्कुल नहीं। देख न रही हो, मेरा टूटा मकान। यही मेरा राजमहल है। मैं इसी की गोद में सुख और सन्तोष की नींद सोता हूँ। मुझे न चाहिये तुम्हारा वैभव, न चाहिये तुम्हारा ऐश्वर्य। मेरे लिये वह सब कंकड़ों के सदृश है वासवदत्ता, कंकड़ों के सदृश!'

"तो क्या सचमुच मेरे साथ न चलोगे उपगुप्त!"

'सचमुच अभी न चलूँगा वासवदत्ता! मेरे आने का जब समय होगा, तब मैं स्वयं ही तुम्हारे पास चला आऊँगा!'

वासवदत्ता का कुचला हुआ स्त्रियोचित मन! वह सांप की भाँति फुफकार उठी। किन्तु चन्द्रमा की भाँति शीतल साधु के मन पर उसका असर ही क्या पड़ सकता था?

पाँच बरस बीते।

बोल उठा, 'ये मनुष्य ऐसे ही स्वार्थी होते हैं! भाई सदियों से मेरी छाया में आराम करते चले आ रहे हैं, किन्तु जब इन्हें मेरे स्थान की आवश्यकता हुई तब मेरी जड़ पर कुल्हाड़ी मारते हुये रञ्च मात्र भी इनका हृदय कम्पित न होगा। ये स्वार्थी जानवरों से भी गये बीते हैं, हृदय-हीन हैं।'

नीम झट बोल उठा, 'नहीं, नहीं भाई ऐसा न कहो। मुझे तो विश्वास नहीं होता कि ये स्वार्थी होंगे। ये ही तो वे लोग हैं, जो प्रतिदिन ईश्वर के सामने घुटने टेक कर उसकी प्रार्थना करते हैं, उससे अपने अपराधों और पापों की क्षमा माँगते हैं। ईश्वर की प्रार्थना करने वाला कभी स्वार्थी और हृदय-हीन नहीं हो सकता।'

ओक चुप हो गया।

कुछ दिनो के पश्चात् मन्दिर के आस-पास के पेड काटे जाने लगे। उसकी डालियाँ छाँटी जाने लगीं। चीत्कार से वन प्रतिध्वनित हो उठा। ओक ने नीम से कहा, मैंने जो कहा था, वह सच निकला न।

नीम गम्भीर बन कर सोचने लगा, क्या सचमुच मनुष्य स्वार्थी और हृदय-हीन होते हैं?

एक दिन प्रभात का समय था। मजदूर पेडों की डालियाँ छाँटने में लगे थे। साधु बड़े दुख से चीत्कार करके गिरती हुई उन डालियों की ओर देख रहा था। उसने आह की एक साँस लेकर मिस्त्री से कहा, 'मिस्त्री जी, इसमें सदेह नहीं, कि मन्दिर अधिक सुन्दर बनाया जा रहा है, किन्तु आप देख रहे हैं न, कि मेरे कुटुम्बियों की किस प्रकार हत्या की जा रही है!'

मिस्त्री साधु की इस बात पर हँस पड़ा।

एक दिन प्रभात का समय था। सूरज की किरणें चमचमा रही थीं। वृक्षों की पत्तियाँ बड़ी मस्ती से मन्दिर की छत पर लोट-पोट कर उसे प्यार कर रही थीं। मिस्त्री अपने विभिन्न औजारों के साथ मजदूरों को लेकर मन्दिर के पास आ पहुँचा। हरी हरी घासों के ऊपर औजारों को रख कर जमीन की नाप जोख करने लगा।

घास पर चमकते हुए औजारों को देख कर वृक्ष सशंकित हो उठे। मन्दिर के समीप ही एक वयोवृद्ध ओक का वृक्ष था। उतना ही वयोवृद्ध, जितना उस छोटे से गाँव का इतिहास था। उसके पास ही एक छोटा-सा नीम का पेड़ भी था। ओक सब कुछ समझ गया। नीम अभी अज्ञान था। उसने अपनी डालियों को हिला कर ओक से पूछा, 'क्यों भाई, ये लोग यहाँ क्या करेंगे?'

ओक ने एक ठंडी साँस ली। उसके मुख से निकल पड़ा, 'ईश्वर दया करे।'

साधु फिर बोल उठा, 'अच्छा मेरी एक प्रार्थना सुनिये, सामने ओक का जो वह बड़ा पेड़ है, उसे न काटिये। वह इस गाँव के इतिहास से भी अधिक पुराना है।'

मिस्त्री ने ओक के वृक्ष की ओर देख कर कहा, 'यह कैसे हो सकता है? उस वृक्ष का काटना तो बहुत ही आवश्यक है। देख नहीं रहे हैं, कि वह दीवाल के बीचोंबीच में है।'

साधु ओक की ओर एक प्यार भरी दृष्टि से देख कर चुप हो गया। उसका हृदय दुःख से भरा हुआ था। वह एक-एक वृक्ष को प्रेम और सहानुभूति की दृष्टि से देख रहा था। वह इतना अधिक दुःखी और आकुल था, मानो सचमुच कुल्हाड़ियाँ उसी के बाल-बच्चों के सिर पर गिर रही हों, मानो सचमुच उसके कुटुम्ब आरे से ही टुकड़े किये जा रहे हों!

कुछ देर के पश्चात् साधु की आँखें फिर एक पेड़ की ओर उठ गईं। वह एक छोटा-सा नीम का पेड़ था। साधु ने बड़ी ही विनीतता के साथ कहा, 'अच्छा मिस्त्री जी, इस नन्हें से नीम को तो रहने दीजिये। यह मुझे अपने पुत्र से अधिक प्यारा है।'

कि तू बच गया। कभी-कभी अपनी डालियों से
पर दो फूल गिरा कर मुझे याद करना।'

नीम शोकित हो उठा। उसकी डाली-डाली और पत्ते-पत्ते तक काँप उठे। मानों वह ओक को काटने वालों के विरुद्ध क्रान्ति करना चाहता हो।

चाँदनी रात थी। अर्द्ध कटा ओक मुरझाया सा अपने स्थान पर खड़ा था। नीम उसकी ओर दुख भरी आँखों से देख रहा था। उजाड़ वन की धरती जैसे दुखी होकर ओक को विदाई सी दे रही हो। पक्षियो ने सवेरे होने के पहिले ही अपने बच्चों को जगाया, और कहा, चलो यहाँ से अब किसी दूसरे गह चलें।

नीम तुरन्त बोल उठा, 'क्यों, अभी तो मैं मौजूद हूँ। अपने रहते हुए मैं तुम सब को कहीं न जाने दूँगा!'

मुरझाया हुआ ओक हँस पड़ा। उसने कहा, 'शाबाश, मेरे बेटे, शाबाश! तुमने मेरा दुख हलका कर दिया। अब मैं बड़े सुख से कटकर भूमि पर गिरूँगा।'

ओक हँस रहा था। पर नीम का पेड़, पत्तों, वन, वन की धरती, और स्वय चाँदनी भी जैसे शोक धूमिल पड़ती जा रही थी।

कई वर्ष बीत गये। भव्य मन्दिर बन कर तैयार हो चुका था। नीम का पेड़ अपने स्थान पर खड़ा था। उसके नीचे बहुत से छोटे-छोटे फूलो से पौदे लहलहा रहे थे। एक ओर एक छोटी सी बेंच भी पड़ी हुई थी। लोग आते और उस बेंच पर बैठकर नीम की शीतल छाया का आनन्द लूटते! मन्दिर के पास प्रायः मनुष्यों की भीड़ लगी रहती थी। साधु बड़ा ज्ञानी था, आत्म-दर्शी था। बच्चे, बूढ़े, जवान सभी साधु के पास आते और उसे

के लिये]

चरणों के पास बिखर गये। साधु ने उन्हें प्रेम से उठा आँखों से लगाया, और फिर आँखे बन्द कर लीं।

समय ने नीम को भी वृद्ध बना दिया। कुछ दिनों मे वह साधु की भाँति इस ससार से चल बसा। पर वीयना-वासी साधु और नीम के पारस्परिक प्रेम को अब तक भी भूल सके हैं। आज भी नीम के स्थान पर पत्थर का एक स्मारक खड़ा है, और वह लोगो की आँखों के सामने साधु तथा नीम के पारस्परिक प्रेम का चित्र खींच रहा है।

ओक की आत्मा को भी यदि पत्थर के इस स्मारक से सतृप्ति मिलती हो तो आश्चर्य क्या? क्योंकि आज भी लोग उसको देखकर उस बन की याद करते और ओक की कहानी कहते हैं।

न्याय के लिए

काशी मे बरुणा नदी का सुन्दर तट। तट मे लगी हुई सैकड़ों झोपड़ियाँ खड़ी थीं। झोपड़ियों मे मटमैले रङ्ग के नगे बच्चे खेल रहे थे। उन बच्चों को देखते ही यह ज्ञात हो जाता कि ये उनके बच्चे हैं, जिन्हें लोग गरीब कहते हैं और जो गरीबी के कारण बस्ती के बीच मे एक इञ्च भी जगह नहीं प्राप्त कर सकते। सचमुच वे झोपड़ियाँ गरीबों ही की थीं। वे गरीब दिन भर शहर मे काम करते और सायंकाल होते ही अपनी झोपड़ियो की गोद में चले जाते थे। वे उन्हीं को राज महल समझते, राजमहल से भी अधिक सुन्दर। उनकी गोद मे उन का जीवन बड़े सुख से बीत रहा था।

रहा था । उस रोते हुए घाट पर वे किलकारियाँ इस
र मालूम हो रही थीं, मानों उजड़े हुए वन में कोयल कूक
हो ।

प्रभात का समय था । सूर्य की किरणें पानी में चमक रही
थीं । महाराणी करुणा कुछ देर तक तट पर क्रीड़ा-खेल करने
के पश्चात् अपनी सहचरियों के साथ पानी मे कूद पड़ीं । चारों
ओर सन्नाटा । कहीं कोई पक्षी भी दिखाई न दे रहा था । खूब
स्नान हुआ, पानी को उछाल उछाल कर, डुबकियाँ लगा-लगा
कर । अन्तःपुर मे रहने वाली इन रमणियों को ऐसा सुयोग
बार-बार तो मिलता नहीं । वर्षों के बाद उन्हे वह दिन मिला
था । रग-रग मे उत्साह था, रग रग मे प्रसन्नता थी । उनके
ललकार चलते हुये हाथों के थपेड़ों से पानी किनारे पर ऐसा
टक्कर मार रहा था । मानो तेज हवा ने उन्हें उकसा दिया हो ।
पर माघ का शीत । थोडी ही देर मे महारानी करुणा का
शरीर थर-थर कॉपने लगा । वे दौड़कर किनारे पर चली आईं ।
किन्तु फिर भी शीत न गया । जाड़े से अङ्ग-अङ्ग हिले जा रहे
थे । महाराणी ने सहचरियों की ओर देख कर कहा, 'आह बड़ी
सर्दी लग रही है । आग जलाओ !'

महाराणी की इच्छा । सहचरियाँ ईंधन के लिए दौड पड़ीं ।
पर उस घाट पर ईंधन कहाँ ? यहाँ शीत मे रानी के प्राण
निकले जा रहे थे । रानी ने सहचरियों की ओर देख कर क्रोध
के स्वर मे कहा, 'बेवकूफो ! सामने झोपड़ियाँ खड़ी हैं ? जला
क्यों नहीं देती इन्हें !'

कुछ सहचरियाँ झोपड़ियों की ओर बढ़ीं । पर एक ने हाथ
जोड़ कर महाराणी से कहा, 'महाराणी, ऐसा आदेश न

दीजिये। ये साधु सन्तों और गरीबों की झोपड़ियाँ हैं। इनमें गरीबों के बच्चे बसते हैं। यदि ये जल जायँगी, तो फिर वे कहाँ रहेंगे।'

महारानी की आँखों से क्रोध की चिनगारियाँ बरस पड़ीं। उन्होंने एक दासी को आदेश देते हुये कहा, 'निकाल दो कान पकड़ कर करुणा की इस मूर्ति को अपने दल से।'

इस आदेश के साथ ही झोपड़ियों में आग लगा दी गई। झोपड़ियाँ जलने लगीं। रानी अपनी सहचरियों के साथ किलकारियाँ मार मार कर दूर से देखने लगीं। पशु इधर उधर भागने लगे, करुणा नदी का पानी फुफकार कर किनारे की ओर दौड़ पड़ा। थोड़ी ही देर में देखते देखते सारी झोपड़ियाँ जल कर खाक हो गईं।

।। अब हम कहाँ रहें महाराज, हमारे बाल-बच्चे किसकी
र में बसें ?'

किसने तुम्हारे झोपड़े जला डाले !-राजा ने सहानुभूति के
र में पूछा ।

'महाराणी करुणा ने महाराज !—एक गरीब ने उत्तर
दिया ।

'महाराणी करुणा ने !'—राजा ने आश्चर्य-चकित होकर
कहा ।

'हाँ महाराज, महाराणी करुणा ने ही—एक गरीब ने
उत्तर दिया—वे आज सबेरे घाट पर नहाने गई थीं ।'

राजा क्रोध से कॉप उठे । आँखो से आग निकलने लगी ।
सिहासन से उठकर अन्तःपुर मे जा पहुँचे । उन्होने रानी से
पूछा, तुमने प्रजा की झोपड़ियाँ जलाकर खाक कर दी । क्या,
यह सच है ?

रानी ने भौंहें तान कर कहा, 'हाँ, सच है महाराज ! पर
काशी की महाराणी के सुख के सामने उन झोपडियो का क्या
मूल्य ? झोपड़ियों का मूल्य राज कोप से चुका न दीजिये ।

राजा की आँखो से चिनगारियाँ निकलने लगीं । उन्होने
होठो को दाँतो से काटकर कहा, 'राजभवन मे रहने वाली
रानी, तू उन झोपड़ियो के मूल्य को नहीं समझ सकती । मैं
तुझे बताता हूँ, कि उन झोपडियों का मूल्य क्या है ?'

राजा ने दासी को बुलाया, और उसे आदेश दिया, 'रानी
के शरीर पर लदे हुए सोने के गहने उतार लो । पहनने के
एक फटा हुआ कपडा दे दो । ठीक वैसा ही, जैसा राह पर
चलने वाले भिखारी है !'

राजा की आज्ञा! दासी को राजा का आदेश पालन करना ही पड़ा। रानी भिखारिणी के वेश में राजा की आज्ञा से जन समूह के सामने लाई गई। राजा ने सबके सामने रानी से कहना आरम्भ किया – 'रानी, अभिमानिनी रानी, कान खोलकर सुन! तुमने गरीबों की झोंपड़ियाँ जला कर जो अपराध किया है, उसके प्रायश्चित्त में तुम्हें एक वर्ष तक भिखारिणी के वेष में दर-दर भटकना होगा, भीख माँग-माँग कर उन झोंपड़ियों को तैयार करना होगा। सावधान! जब तक ये झोंपड़ियाँ फिर से बनकर तैयार न हो जाएं, लौट कर यहाँ मत आना!'

महारानी भिखारिणी के वेश में आगे चल पड़ी। महाराज की आँखों में टप टप आँसू टपक रहे थे।

सुनते हैं, उस दिन से महाराज फिर कभी न्याय सिंहासन पर न बैठ सके।

एन्टन ने आंखें बन्द करके मस्तक झुका लिया।

दूसरे दिन एन्टन कचहरी में जाकर हाज़िर हो गया। हाकिम की आंखें क्रोध से चढ़ी हुई थीं। उसने आँखों को नचा कर रोष से पूछा, 'क्यों, तुमने सेना में अब तक नाम क्यों नहीं लिखाया ?'

एन्टन ने उत्तर दिया, मैं सेना में नाम नहीं लिखा सकता। सेना में नाम लिखाने से युद्ध में दूसरों का रक्त बहाना पड़ता है। मेरी दृष्टि में यह पाप है, महा पाप !'

हाकिम ने कहा, 'किन्तु यह युद्ध तो देश के लिये है। क्या तुम देश की लाज न रक्खोगे ?'

एन्टन ने उत्तर दिया, 'तब तो यह युद्ध और भी अधिक स्वार्थ पूर्ण है। देश की लाज नहीं, मैं तो मानव जगत की लाज रखना चाहता हूँ।'

हाकिम ने अनेक प्रकार की बातें की। युक्तियों से काम लिया, डराया, धमकाया; किन्तु एन्टन विचलित न हुआ। वह बराबर यही कहता गया, मैं सेना में नाम न लिखाऊँगा। सेना में नाम लिखाना पाप है, महा पाप !!

हाकिम क्रोध से काँप उठा। उसने एन्टन को तीन महीने का कठोर कारावास दे दिया। एन्टन जेल चला गया। जेल जाते समय वह हँस रहा था, मुसकुरा रहा था। एन्टन की माँ भी इस समाचार से बड़ी प्रसन्न हुई, बड़ी आह्लादित। क्यों न हो ? उसका बेटा सत्य के लिये जेल गया था न !

तीन महीने के पश्चात् एन्टन जेल से निकला। फिर वही आदेश, फिर वही फरमान। सिपाही आज्ञा-पत्र दे गया, 'शीघ्र सेना में भरती हो जाओ, नहीं तो दण्डित किये जाओगे !'

हीरा चित्रकार
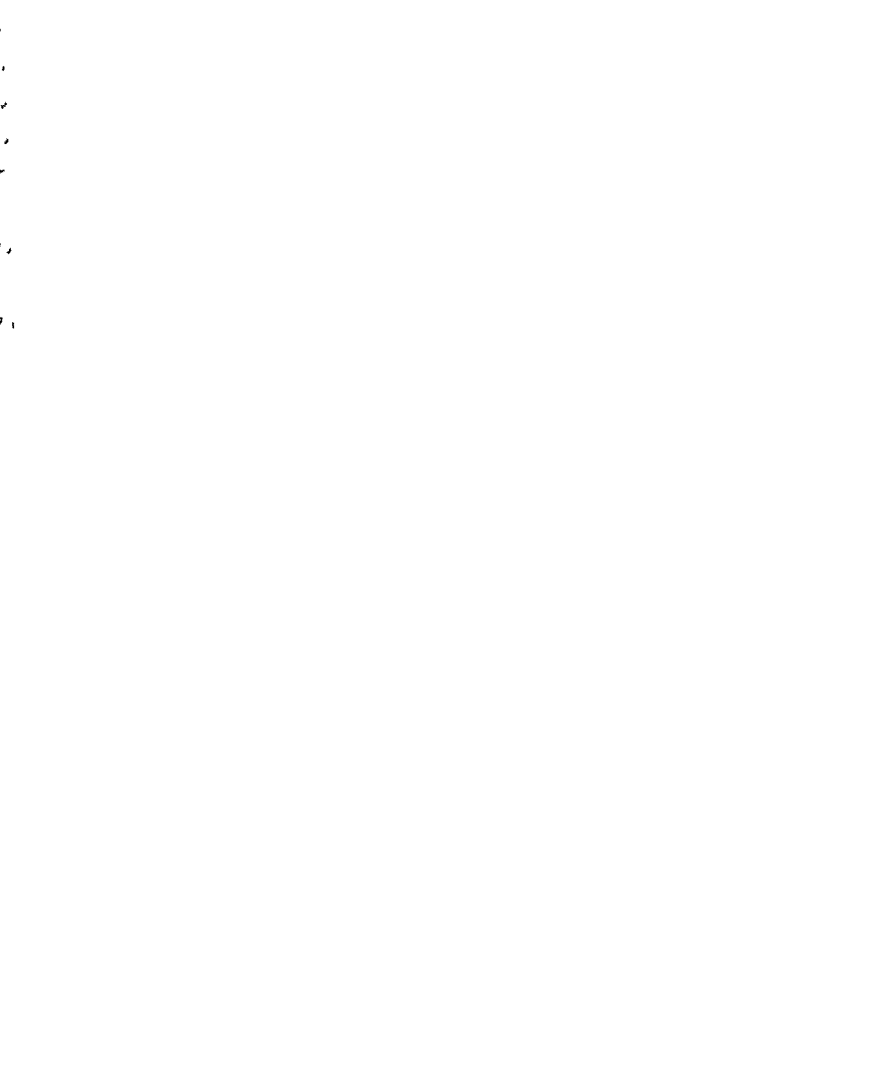
वह चित्रकार था, महान्। नाम था, हीरा, काम भी हीरा ही के सदृश था। हीरा ही के सदृश चित्रकारों मे अमूल्य था, ज्योति था। लोग उसको कला की प्रतिमा कहते, विश्वकर्मा का साक्षात् अवतार। किन्तु वह विनयी था, नम्र था और था सरल। विनय, नम्रता और सरलता ने उसकी कला को और भी अधिक सजीव बना दिया था। उसकी ख्याति देश के कोने-कोने में फैल चुकी थी, वह देश के हृदय मे स्थान पा चुका था।

दर्भावती दुर्ग के प्रधान फाटक की वह नक्काशी। सभी चित्रकार मुक्तकण्ठ में उसकी प्रशंसा कर रहे थे। वह विश्वकर्मा की कृति है, साक्षात् कला की रचना है। हीरा अपनी उसी नक्काशी से विश्वकर्मा और साक्षात् कला के रूप में सारे देश में फैल गया। कोने-कोने में उसकी ख्याति गूँज उठी और लोग उसे कहने लगे, अमर कलाकार।

महाराज सिद्धराज के कानों में भी यह समाचार पड़ा। गुजरात का चित्रकार हीरा अमर-कलाकार, विश्व-कर्मा; कला की साक्षात् मूर्ति।' उन्हें कौतूहल हुआ, आश्चर्य हुआ। वे स्वयं दल-बल उसकी कला-चातुरी देखने के लिये दर्भावती जा पहुँचे।

उन्होंने दर्भावती जाकर देखा—हीरा की कला-चातुरी। उनके मुख से बरबस निकल पड़ा, यह 'मनुष्य की कृति नहीं, इसे किसी देवता ने बनाया है।' किन्तु यह तो हीरा की कृति थी। हीरा सचमुच मनुष्य रूप मे देवता था, विश्वकर्मा था इसीलिये तो महाराज सिद्धराज का मस्तक भी उसकी कृति के सामने नत हो गया।

से दाँतों को पीसने लगे। किन्तु चुप रहे। उन्होंने चित्रकार को विदा कर दिया और कहा, सन्ध्या समय फिर आना!

सन्ध्या समय हीरा पुनः महाराज के सामने उपस्थित हुआ। महाराज ने कहा, 'हीरा, तुम्हारे लिये मेरा एक आदेश है।'

हीरा ने महाराज की ओर देखा और पूछा, 'कौन सा महाराज!'

महाराज ने कहा, 'तुम्हें शपथ पूर्वक यह प्रतिज्ञा करनी होगी, कि तुम आजीवन सिद्धराज के अतिरिक्त और किसी का काम न करोगे।

हीरा आश्चर्य-चकित हो उठा। उसके मन में अनेक विचारों की लहरियाँ एक साथ ही दौड़ पड़ीं। महाराज ऐसी बात क्यों कह रहे हैं? उसके मन में क्रोध की कुछ भावना भड़की। किन्तु उसने सब को दबा कर उत्तर दिया, 'यह तो नहीं हो सकता महाराज! कला बाँधकर कदापि नहीं रक्खी जा सकती और फिर मैं श्रमजीवी हूँ, मुझे जहाँ काम मिलेगा, मैं करूँगा। चाहे वह कोई भी हो!'

महाराज ने अपनी बातों को दूर तक फेंकते हुये कहा, किन्तु मैं तुम्हें इस चिन्ता से मुक्त कर दूँगा हीरा! मैं तुम्हें तुम्हारे जीवन तक काम दूँगा!'

चित्रकार ने महाराज की बात मान ली। महाराज ने फिर पूछा, 'तो प्रतिज्ञा करते हो न कि आजीवन किसी का काम न करूँगा।'

चित्रकार के हृदय को एक ठेस सी लगी। उसका हृदय पीड़ा से मथ उठा। उसने उत्तर दिया, 'ऐसी प्रतिज्ञा मैं कैसे कर सकता हूँ महाराज! मन जो मेरे वश में नहीं। जब तक

हीरा बन्दी हो गया। उन्हीं महाराज सिद्धराज के आदेश पर उसके हाथों मे हथकड़ियाँ डाल दी गईं। वह सत्य के लिये हथकड़ियों को खनखनाता हुआ जेल चला गया। जेल जाते समय उसकी आकृति पर ज्योति थी, स्वाभिमान था।

सन्ध्या बीत चुकी थी। पक्षी अपने अपने घोंसले में सोने के पहले चहचहा रहे थे। उसी समय लोगों ने सुना, कि "हीरा दुर्ग की दीवाल मे चुन दिया गया।" लोगों के हृदय से एक चीख-सी निकल पड़ी। लोगो ने कहा, 'सचमुच गुजरात का हीरा दीवाल मे चुन दिया गया, सदा के लिये मिट्टी के ढेर के नीचे छिपा दिया गया।'

सुनते हैं महाराज सिद्धराज ने अपनी इस क्रूरता पर अधिक पश्चात्ताप प्रकट किया था। यह भी सुनते हैं, कि हीरा की स्त्री ने, जीवित अवस्था ही मे हीरा को भूमि के अन्दर से निकाल लिया था, और महाराज ने उसका अधिक सम्मान किया था। किन्तु उसकी उँगलियाँ कुचली हुई थीं। सचमुच उसकी कला का अन्त कर दिया था। जो हो, दभोय में 'हीरा भगोल' नाम का दुर्ग आज भी उसकी स्मृत मे खड़ा है, और आज भी लोगों को उसकी अमरता का सन्देश सुना रहा है।

आत्म-समर्पण

वह एक युवक था। सुन्दर और स्वस्थ। संगीत में पटु था। नगर मे उसकी दो साधारण दूकाने थीं। उन्हीं से अपने जीवन के काम चलाता था। सभी उसे अच्छा कहते, बहुत अच्छा। सब के साथ उसका व्यवहार भी बहुत अच्छा होता था। अपना हो या पराया, वह सब को एक ही दृष्टि से देखता था।

किशोर की आँखों में आँसू छलक आये ! उसका अन्तर
ा कोना-कोना चिल्ला उठा। उसने हाथ बाँध कर रोते हुये
वर में कहा, 'मैं खूनी नहीं सरकार, एक व्यापारी हूँ। मेरे
ास आठ सहस्र रुपये हैं। मैं व्यापार के लिये जा रहा हूँ।"
किन्तु कौन सुनता है उस किशोर की। उसका रोना धोना
ड़-गिड़ाना, सब निष्फल गया, बेकार। वह पकड़ कर थाने
ले जाया गया। उसके रुपये छीन लिये गये और चलाया
ाया उस पर हत्या और लूट का मुकद्दमा। उसे दण्ड मिला,
दण्ड भी साधरण नहीं, बहुत कठोर। २५ कोड़े और
आजीवन जेल।

वश ही क्या था ? किशोर कारागार मे जाकर जीवन के
दिन बिताने लगा। एक एक करके धीरे धीरे छब्बीस वर्ष बीत
गये। किशोर वृद्ध हो गया। बाल पक गये, चमड़े लटक आये।
अब वह पहले का-सा किशोर न था। अब न वह हँसता था,
न गाता था, न किसी से अधिक बात करता और न करता
था अपने समय को नष्ट। अपना काम करता और पुस्तकें
पढ़-पढ़ कर अवसर के समय को काट देता था। पुस्तकों से
बड़ा प्रेम था। ईश्वर-प्रार्थना उसे कभी न भूलती। बात-बात
मे उसका सिर ईश्वर के सामने झुका रहता था। इसी से सभी
बन्दी और कर्मचारी भी किशोर को सब से अच्छा समझते
और उसके साथ अच्छा ही व्यवहार भी करते थे।

किशोर को एक ही चिन्ता थी, केवल अपने कुटुम्बियों
की। जब वह घर से निकला था, छोटे-छोटे बच्चे थे। स्त्री थी।
छब्बीस वर्ष बीत गये। न जाने वे जीवित हैं, या मर गये। किशोर
का मन बराबर इसी चिन्ता के पथ पर दौड़ा करता था।

एक दिन कारागार में कुछ नये बन्दी आये। पुराने ब[illegible]

[ ] । रक्त से सनी हुई कटार तुम्हारी पोटली से निकली और हत्यारा कोई दूसरा होगा। जिस पोटली को तुम अपने सिर के नीचे रख कर सोये थे, उसमे कोई दूसरा व्यक्ति कटार रख ही कैसे सकता है ?

किशोर ने समझ लिया, कि हरदयाल ही वह व्यक्ति है, जिसके कारण वह इतने दिनों से जेल की यंत्रणायें सह रहा है। और जिसके कारण उसका सारा जीवन ही नष्ट-सा हो गया। किशोर के हृदय मे हिंसा और बदला लेने की भावना जाग उठी। भीतर ही भीतर उसके हृदय मे एक आग सी प्रज्वलित हो उठी। दिन मे न उसे सुख मिलता था, और न रात में शान्ति। प्रतिहिंसा की भावना ने जैसे उसे उन्मत्त बना दिया।

तीन चार दिन के पश्चात् एक दिन रात अधिक बीत चुकी थी। किशोर जेल के अपने कमरे में पड़ा था, किन्तु उसकी आँखों मे नींद नहीं थी। वह आकुल था, अशान्त था। कभी बढ़ाता था, तो कभी उठकर टहलने लगता था। इसी समय सहसा उसे ज्ञात हुआ, कि दीवाल की मिट्टी धीरे-धीरे खिसक रही है। किशोर अभी उसे देख ही रहा था, कि हरदयाल सेंध की राह से कमरे मे आ निकला, और तत्क्षण किशोर को भूमि पर गिरा कर उसकी छाती पर सवार हो गया। कहने लगा, 'आज मैं तेरे जीवन का अन्त कर दूँगा। खबरदार, यदि चूँ किया तो !'

किन्तु दैव की इच्छा ! बाहर कुछ खटका हुआ, और हरदयाल किशोर को छोड़ कर पुनः अपने कमरे में चला गया।

जेल मे सेंध ! दूसरे दिन प्रातःकाल जेल में एक हलचल सी मच गई। जेल के कर्मचारी बन्दियों की संख्या गिनने लगे। किन्तु बन्दो सभी मौजूद थे ! फिर सेंध किसने और क्यों

किशोर की महानता, उसके व्यक्तित्व की निर्मलता से हरदयाल का हृदय छलनी-छलनी हो गया। वह उसके सामने फूट फूट कर रोने लगा। उसका वह हृदय पश्चात्ताप का था, दुःख का था। किशोर की आँखों में भी आँसू छलक आये। उसने कहा, रोओ न हरदयाल, ईश्वर तुम्हें क्षमा करेंगे।

दूसरे दिन प्रातःकाल हरदयाल ने जेलर के पास जाकर अपनी और किशोर की पूरी कहानी सुनादी। जेलर ने किशोर को मुक्त किये जाने की आज्ञा दे दी। सिपाही जब किशोर को मुक्ति का पत्र लेकर उसके कमरे में गये, तब वहाँ इस प्रसन्नता-सूचक समाचार को सुनने वाला कोई था ही नहीं! केवल किशोर का निर्जीव शरीर भूमि पर पड़ा था।

सचमुच वह उसकी मुक्ति का दिन था।

अन्तिम सीख

सन्ध्या का समय था। गुरुगोविन्दसिंह सरिता के एकान्त तट पर बैठे हुए थे। उनकी वह गम्भीर मुख-मुद्रा! मानों वे कुछ सोच रहे हों! सचमुच वे कुछ सोच रहे थे। वे सोच रहे थे, अपने जीवन का लक्ष्य! क्या मैं वहाँ तक न पहुँचूँगा? क्या मैं उसके अनुसार समस्त भारत को न जीत सकूँगा? आह, मेरी आशा! क्या वह धूल में मिल जायगी?

सूर्य पश्चिम की ओट में छिपता जा रहा था। सन्ध्या सघन होती जा रही थी। पर गुरु अपने विचारों में निमग्न थे। सहसा किसी की पद-ध्वनि से उनका ध्यान भङ्ग हुआ। उन्होंने देखा एक पठान।

क्या कर रहे हैं गुरु जी ! सिंह का बच्चा बड़े होने पर सिंह ही होगा !

किन्तु गुरु ने कभी लोगों की इन बातों की परवाह न की। वे लोगों को यह कह कर शान्त कर देते थे, 'फिर ठीक ही तो है। वह सिंह का बच्चा है, इसीलिये तो मैं भी इसे सिंह बना रहा हूँ।'

गुरु बराबर उसे अपने हृदय का स्नेह देते गये। वह बड़ा हुआ, जवानी रग-रग मे दौड़ उठी। गुरु को वह अपना गुरु मानता, पिता समझता। छाया की ही भांति उनके साथ-साथ रहता, उनकी आज्ञाओं पर निछावर होता। गुरु के हृदय का सारा स्नेह अब उसी के लिये था, उसी युवक पठान के लिये। गुरु के सभी लडके एक-एक करके युद्ध मे मारे जा चुके थे। अब वही पठान उनकी आँखों का तारा था। उनके प्राणों का प्राण था।

एक दिन प्रभात का समय था। पठान गुरु के समीप आया और उनके पैर छूकर कहने लगा, गुरु जी, अब जाने की आज्ञा दें। कहीं नौकरी करके कुछ कमाऊँ-धमाऊँ! आखिर कब तक इसी प्रकार बैठा रहूँगा!'

गुरु ने प्रेम से उसके कन्धे पर हाथ रक्खा, और कहा 'बेटा अभी अन्तिम शिक्षा बाकी है।'

युवक पठान गुरु की ओर देखकर चुप हो गया।

दूसरे दिन सवेरे सूर्य निकल रहा था। गुरु ने युवक पठान को अपने पास बुलाया, और कहा, हाथ में तलवार लेकर चलो मेरे साथ!' पठान हाथ मे तलवार लेकर गुरु के पीछे-पीछे चल पड़ा। गुरु के सेवकों को आश्चर्य हुआ। भय और आशंका

गुरु ने प्रेम से उसे उठा लिया। गुरु की आँखों मे आँसू थे। किन्तु पठान ने गुरु की ओर न देखा। वह मुह फेर कर, वहाँ से चला आया, और अब गुरु से दूर ही दूर रहने का, प्रयत्न करने लगा। अब न वह गुरु के साथ शिकार खेलने जाता, और न कभी हथियार लेकर अकेले उनके कमरे मे। उसे आशङ्का थी, अपनी हिंसा वृत्ति से, अपनी बदला लेने की भावना से।

एक दिन की बात है, गुरु पठान के साथ शतरञ्ज खेल रहे थे। गुरु जीतते गये, पठान हारता गया। दिन बीता, सन्ध्या आई और वह भी चली गई, किन्तु शतरञ्ज बन्द न हुआ। सब लोग उठ-उठ कर चले गये, पर पठान गुरु के साथ खेलता ही रहा। बार-बार हारने से वह जैसे खीज-सा गया था। गुरु ने कहा, पिता के खूनी के साथ इस प्रकार पागल की तरह खेलने से तुम्हारी जीत नहीं हो सकती।

गुरु की बात समाप्त भी न हो पाई थी, कि पठान ने तलवार लेकर गुरु की छाती मे भोंक दी। गुरु ने कहा, "अब मैं सन्तुष्ट हुआ। आज तेरी अन्तिम सीख हुई। मै तुझे आशीर्वाद देता हूँ।"

बैजू का त्याग

ये वे दिन थे जब गुजरात पर सुल्तान बहादुरशाह और दिल्ली के राज-सिंहासन पर हुमायूं के अधिकार थे। सारा भारत हुमायू के चरणों के नीचे, किन्तु गुजरात फिर भी सिर उठाये हुये था। वह हुमायूँ की आँखों को खटक रहा था, काँटे की तरह, शूल के सदृश।

से वे भी गुरु के साथ चलने के लिये तैयार हुये, किन्तु गुरु ने उन्हें मना कर दिया।

नदी का जन-शून्य तट ! शाल के ऊँचे-ऊँचे वृक्ष चुपचाप खड़े थे। सरिता का स्वच्छ जल मन्द गति से आगे खिसक रहा था। चारों ओर निस्तब्धता थी। गुरु पठान युवक के साथ इसी निस्तब्धता में धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। एक स्थान पर सहसा गुरु रुक गये। युवक भी रुक गया। गुरु ने उँगली से संकेत करके युवक से कहा, 'इस स्थान को खोदो।'

युवक भूमि खोदने लगा। कुछ दूर पर एक गड़ा हुआ पत्थर मिला। पत्थर पर लाल रङ्ग के अगणित चिह्न थे! युवक उन चिह्नों को देखने लगा। गुरु ने कहा, देखते क्या हो? ये चिह्न तुम्हारे पिता के रक्त के चिन्ह हैं। एक दिन इसी स्थान पर मैंने तुम्हारे पिता की हत्या की थी। वह निरपराध था, बेकसूर था। आज अब तेरी बारी है युवक! यदि तू अपने पिता का बदला लेना चाहता है, तो मैं सामने खड़ा हूँ! मुझे मार कर मेरे रक्त से अपने पिता की आत्मा को तृप्त कर!

युवक पठान! पिता का खूनी उसकी आँखों के सामने! आँखों से आग-सी निकलने लगी। दाहिना हाथ झट से तलवार की मूठ पर जा पड़ा, गुरु खड़े थे, बिल्कुल निश्चल, बिल्कुल शान्त! तलवार अभी उठी भी न थी, कि पठान की आँखें गुरु की आँखों से जा मिलीं। पठान पानी-पानी हो गया। तलवार फेंक कर गुरु के चरणों से लिपट गया, और कहने लगा, शैतान से खेल न खेलिये गुरुजी! मैं अपने पिता को भूल चुका हूँ, भूल चुका हूँ। अब तो आप ही मेरे पिता हैं, गुरु हैं, भाई हैं, और सब कुछ हैं।'

गुरु ने प्रेम से उसे उठा लिया। गुरु की आँखों मे आँसू थे। किन्तु पठान ने गुरु की ओर न देखा। वह मुह फेर कर, ...ाँ से चला आया, और अब गुरु से दूर ही दूर रहने का ...त्न करने लगा। अब न वह गुरु के साथ शिकार खेलने ...ाता, और न कभी हथियार लेकर अकेले उनके कमरे मे। ...से आशङ्का थी, अपनी हिंसा वृत्ति से, अपनी बदला लेने की भावना से।

एक दिन की बात है, गुरु पठान के साथ शतरञ्ज खेल रहे थे। गुरु जीतते गये, पठान हारता गया। दिन बीता, सन्ध्या ...आई और वह भी चली गई, किन्तु शतरञ्ज बन्द न हुआ। ...ब लोग उठ-उठ कर चले गये, पर पठान गुरु के साथ खेलता ...ही रहा। बार-बार हारने से वह जैसे खीज-सा गया था।

गुरु ने कहा, पिता के खूनी के साथ इस प्रकार पागल की तरह खेलने से तुम्हारी जीत नहीं हो सकती!

गुरु की बात समाप्त भी न हो पाई थी, कि पठान ने तलवार लेकर गुरु की छाती मे भोंक दी। गुरु ने कहा, "अब मैं सन्तुष्ट हुआ। आज तेरी अन्तिम सीख हुई। मै तुझे आशीर्वाद देता हूँ।"

बैजू का त्याग

ये वे दिन थे जब गुजरात पर सुल्तान बहादुरशाह और दिल्ली के राज-सिंहासन पर हुमायूं के अधिकार थे। सारा भारत हुमायूं के चरणों के नीचे, किन्तु गुजरात फिर भी सिर उठाये हुये था। वह हुमायूँ की आँखों को खटक रहा था, काँटे की तरह, शूल के सदृश!

आखिर हुमायूँ ने एक बहुत बड़ी सेना के साथ गुजरात पर आक्रमण कर दिया। सुल्तान लडा, बड़ी वीरता से लड़ा। किन्तु हार गया। भारत ही की भांति गुजरात भी हुमायूँ के चरणों पर लोटने लगा। उसने भी उसकी सत्ता स्वीकार कर ली।

वह विजय का दिन था। गुजरात की राजधानी अहमदाबाद में हुमायूँ, दरबार के मध्य मे, सिंहासन पर आसीन था। उसके शरीर पर था लाल पोशाक। लाल पोशाक युद्ध का चिन्ह है। सैनिक सामन्त अपने सम्राट को लाल पोशाक मे देखकर सोचने लगे, 'क्या अभी युद्ध समाप्त नहीं हुआ ? क्या गुजरात पर पूर्ण रूप से विजय स्थापित नहीं हो सकी ?

हुमायूँ कुछ खीमा हुआ था। उसकी आँखे क्रोध उगल रही थीं। आखिर वह दरबार की मौनिमा को भङ्ग करते हुये बोल उठा, 'वीरो, गुजरात जीता अवश्य जा चुका है, किन्तु मेरी इच्छा अभी पूरी नहीं हुई। मेरी इच्छा तो तब पूरी होगी, जब तुम गुजरात की समस्त प्रजा को अपने वश मे कर लोगे।'

सम्राट हुमायूँ की आकांक्षा। सारे गुजरात मे मुगल सैनिक टिड्डी की भांति छिटक पड़े। निरीह और निरपराध प्रजा मौत के घाट उतारी जाने लगी। चारों ओर से त्राहि त्राहि की आवाज उठने लगी। पर सुनता कौन है ? मुगल सैनिक बराबर अपना काम करते ही गये।

एक दिन एक दुबला-पतला मनुष्य अपने प्राणो के डर से पागल की भांति भागता जा रहा था। सर्वत्र ही तो भगदड़ मची थी। वह भी उसी भगदड़ में भागा जा रहा था। पर दुर्भाग्य पीछे से एक मुगल सिपाही ने आकर उसे पकड़ लिया। सिपाही के हाथ में नङ्गी तलवार थी। उसके प्राण कांप उठे। सोचने

लगा, अब जीवित न रहूँगा। किन्तु फिर भी साहस करके बोला, 'मुझे न मारो, मारने से तुझे लाभ ही क्या होगा ? यदि तुम मुझे छोड़ दो तो तुझे अपने सिर के बराबर सोना दूँगा !'

सिर के बराबर सोना ! सिपाही के मुँह में पानी भर आया। कहने लगा, 'लाओ सोना, नहीं तो अभी तलवार से गर्दन उड़ा देता हूँ।,

सिपाही ने उसके सिर पर बँधी हुई पगड़ी खींच ली। उसी पगड़ी से उसे एक वृक्ष मे बाँधने लगा। सहसा कोई पीछे से बोल उठा, 'छोड दो उसे ! पेड़ मे मत बाँधो।'

सिपापी ने पीछे फिर कर देखा, उसका सेना का नायक। नायक हिन्दू था। सिपाही क्या करे ? उसके मन मे सन्देह अवश्य पैदा हुआ, किन्तु वह उसका नायक था। सिपाही ने उसे मुक्त कर दिया।

नायक उस पागल मनुष्य को अपने साथ लेकर हुमायूँ के पास गया। सिपाही को नायक का यह काम बुरा तो लगा ही था, वह भी हुमायूँ के पास जा पहुँचा। उसने हुमायूँ से कहा, जहाँपनाह, यह आदमी सुल्तान बहादुर का मुख्य आदमी है। मैं इसे मार डालना चाहता था, किन्तु नयाक ने इसे बचा लिया। यदि वह जाता रहा तो हम लोगों को हानि पहुँचने की आशका है।

हुमायूँ की आँखे चढ़ गई। वह त्यौरियाँ बदल कर नायक से बोला, 'यह तो विश्वास-घात है, धोखा है, खोलो इस रहस्य की बात को ! नहीं, देखते हो न मेरी तलवार को; तुम भी इसकी घाट उतार दिये जावोगे !'

नायक का मस्तक सम्राट के सामने झुक गया। उसने नम्रता के साथ उत्तर देते हुये कहा, मैंने इसे इसलिये नहीं बचाया है

कि श्रीमान् यह हिंदू है ? बल्कि मैंने इसे इसलिये बचाया है कि यह भारतवर्ष का वैभव है, उसकी श्रेष्ठ संगीतकला ही साक्षात् सजीव प्रतिमा है। मुझे विश्वास नहीं कि हुमायूँ ऐसे विचार और कलाप्रेमी सम्राट इसका मरना पसन्द करेंगे।

हुमायूँ ने पुनः क्रोध के स्वर में कहा, 'तुम्हारी इस बात का प्रमाण क्या है नायक।'

नायक ने उत्तर दिया, 'प्रमाण यह स्वयं ही है श्रीमान्! इसका नाम है, बैजू बावरा। आप इसे अपना सुयश गाने की आज्ञा दें। आपको अपने आप ही प्रमाण मिल जायगा!

सम्राट का आदेश हुआ। बैजू गाने के लिये बैठा। किन्तु वह सम्राट की प्रशंसा कैसे करे ? सम्राट ने तो उसकी मातृभूमि को कुचल दिया था। उसके दिल में दर्द था, पीड़ा थी। उसके कंठ में जो देवी निवास करती थी, उसके सिद्धांतों के यह विरुद्ध था कि वह किसी की झूठी प्रशंसा करे। वह भाट तो था नहीं, वह तो कलाकार था, संगीतज्ञ था।

वह गाने लगा। उसके कंठ में स्वर्गीय आकर्षण था। सत्य की ज्योति थी। उसने सम्राट को ललकारा, 'क्रूर राजा तेरी तलवार का शिकार बनने के लिये एक भी मनुष्य जीता न बचा। इतने पर भी यदि तेरी प्यास न बुझी हो, मनुष्य को काट डालने की तेरी आशा पूरी न हुई हो, तो इन मरे हुये मनुष्यों को जिला और उन्हें फिर से कत्ल कर।'

सम्राट दहल उठा। दरबारी कम्पित हो गये। बैजू का स्वर पर्दे-पर्दे को फाड़ता हुआ मर्म मे जा पहुँचा। कितने रोने लगे, कितनों के मस्तक झुक गये। सम्राट का सिर लज्जा से नीचे झुका जा रहा था। बैजू के मर्मभेदी स्वर ने उसे व्याकुल कर दिया। वह आँखों को बन्द कर एक कोठरी के भीतर भागा।

कुछ देर के पश्चात् जब वह कोठरी के भीतर से निकला, तब उसके शरीर पर नीली पोशाक शान्ति की सन्देश वाहिका थी। उसे देखकर सैनिक सामन्त समझ गये, कि अब सम्राट की इच्छा पूरी हुई, अब युद्ध बन्द होगा।

हुमायूँ ने सिंहासन पर बैठकर आज्ञा दी, एक शाही पोशाक लाओ!

सम्राट ने अपने हाथों से उसे बैजू को पहनाया और कहा, 'मैं तुम्हारे संगीत पर मुग्ध हूँ बैजू! मैं तुम्हें अधिकार देता हूँ, कि तुम चाहे जो करो। तुम सचमुच भारत के मैभव हो!'

बैजू का मस्तक सम्राट के सामने झुक गया। उसने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया, 'मैं भिखारी हूँ श्रीमान्!'

सम्राट ने कहा, 'नहीं बैजू, तुम अमूल्य हो! मेरे पास तुम्हें देने के लिये कुछ भी नहीं है, फिर भी तुम्हारी जो कुछ इच्छा हो माँगो।'

केवल सम्राट की दया—बैजू ने उत्तर दिया।

नहीं कुछ और—सम्राट ने आग्रह पूर्वक कहा।

अच्छा तो युद्ध बन्द कर दीजिये श्रीमान्!—बैजू की यही माँग थी, सुलतान बहादुर और उसके सगे-सम्बन्धियों को मुक्त कर दीजिये।

सम्राट का मस्तक बैजू की इस माँग के सामने झुक गया, और बैजू का मस्तक ऊँचा उठ गया, बहुत ऊँचा।

विद्वान कुली

बंगाल के उस छोटे से स्टेशन पर जब गाड़ी रुकी, तब सूर्य पश्चिम की ओट में छिप रहा था। रजनी धीरे-धीरे अपने अंधकार को फैलाती हुई आगे खिसकती आ रही थी, मानों वह घोषणा कर रही हो कि जो कुछ करना हो, शीघ्र कर लो; जहाँ जाना हो शीघ्र पहुँच लो, नहीं तो मेरा राज्य, सर्वत्र अंधकार।

गाड़ी स्टेशन पर कुछ देर तक रुक कर पुनः धुँआ फेंकती हुई चल पड़ी। जो दो चार यात्री उतरे थे, उन्होंने भी टिकट देकर अपने-अपने घर का रास्ता पकड़ा। किन्तु वह युवक ही रह गया। शरीर पर कोट, पतलून, टाई, सिर पर हैट और बढ़िया जूता। दृष्टि पसार कर इधर उधर देख रहा था। छोटा-सा बेग और बिस्तर का बण्डल भूमि पर पड़ा था। उसी के लिये बिचारे को कुली की खोज थी। किन्तु वहाँ कुली कहाँ? गाँव के स्टेशन मे भी भला कहीं कुली मिलता है? और फिर सन्ध्या का समय! आस पास के गाँव वाले अपने-अपने घर जमे थे।

सन्ध्या सघन होती जा रही थी। ज्यों-ज्यों अन्धकार बढ़ता जा रहा था, त्यों-त्यों उसकी आकुलता भी बढ़ती जा रही थी। सोच रहा था, आज घर न पहुँच सकूँगा क्या? किन्तु यहाँ स्टेशन पर तो कुछ खाने-पीने को भी न मिलेगा।

युवक अभी सोच ही रहा था कि कहीं से एक मनुष्य घूमता-घामता युवक के पास आ पहुँचा। वह बहुत ही सरल था, सादे-कपड़े पहने हुये था। मानो वह युवक की ही सहायता के लिये आया हो। उसने युवक के पास जा कर नम्रता से पूछा, आप क्यों खड़े हैं? आपको क्या चाहिये?

युवक ने देखा एक साधारण ग्रामीण। उसने उत्तर दिया,
...जा। क्या मेरा यह सामान मेरे घर तक पहुँचा दोगे ?
...फी मजदूरी दूँगा ?

उस मनुष्य ने कहा, 'क्यों नहीं ?'

उसने बिना कुछ मोल-चाल किये ही युवक का सामान अपने सिर पर लाद लिया। रास्ते भर दोनों किसी से कुछ न बोले। घर पर पहुँच कर युवक घर के भीतर चला गया और एक दूसरा व्यक्ति हाथ में लालटेन लेकर आया। वह युवक का बड़ा भाई था।

उसने कुली से कहा, 'सामान रख दो और लो ये पैसे लो।'

कुली ने सामान रख दिया। किन्तु पैसे की ओर उसने आँख भी न घुमाई। जिस ओर से आया था, उसी ओर फिर उसके पैरों ने चलना आरम्भ किया।

युवक का भाई आश्चर्य-चकित हो उठा। आज तक उसने ऐसा कुली कहीं न देखा था, जो परिश्रम करने के पश्चात् मिलने पर भी पैसा न ले। वह कुतूहल वश आगे बढ़ा और कुली के आगे खड़ा होकर लालटेन के प्रकाश में उसका मुख देखने लगा।

सहसा उसके मुख से निकल पड़ा, 'अरे !'

कुछ ही देर के पश्चात् उसका मस्तक कुली के चरणों पर था।

कुछ ही देर में समस्त गाँव में यह खबर फैल गई कि ईश्वरचन्द्र विद्यासागर कुली के रूप में। गाँव वाले दर्शन के लिये दौड़ पड़े। वह युवक भी आया। किन्तु उसका सिर लज्जा से नीचे गड़ा जा रहा था।

सुदूर दिल्ली के राजभवन मे भी उनका उच्च स्वर गूँज उठा। वहाँ भी दीवालों को चीर कर उनके 'अलख निरंजन' की समा गूँज उठी। दिल्ली-पति ने आँखें मल कर आश्चर्य से पूँछा, यह किसकी समा है ?

किसी ने उत्तर दिया, 'पंजाब के युवक सिक्खों की। सभी वीर बन्दा वैरागी के 'अलख निरंजन' रस को पी कर मस्त हो उठे हैं।'

मुगल सम्राट दिल्ली-पति आकुल हो गया। उसकी आँखों की नींद आँखों ही मे समा गई। उसने सेनापति को बुला कर कहा, पंजाब से उठने वाली इस आवाज को बन्द करो, इससे न जाने क्यों, मेरे मन की दीवाले भी हिली जा रही है ?

सम्राट की आज्ञा। मुगल सेना दल बल के साथ चल पड़ी पंजाब की ओर। गुरुदासपुर में भयङ्कर युद्ध हुआ, बहुत ही भयंकर। युवक सिक्ख 'अलख निरंजन' और 'वाह गुरु की जय' के साथ अपने प्राणों का उत्सर्ग करने लगे। किन्तु फिर भी भाग्य ने दिल्ली-पति मुगल सम्राट के गले में जयमाल डाली बन्दा पकड़ लिया गया। अकेला नहीं, अपने सात सौ साथियों के साथ। मुगल सेना सबको पकड़कर दिल्ली ले गई।

वह एक दिन था। दिल्ली की प्रधान सड़क के महलों की खिड़कियाँ खुली थीं। खिड़कियो से स्त्रियाँ और बच्चे उत्सुकता पूर्वक सड़क की ओर झाँक रहे थे। सडक की दोनों पटरियों पर मानव-समूह उमड़ा-सा पड़ रहा था। इधर-उधर शाही पहरेदार भी खड़े थे, बहुत ही सतर्क, बहुत ही सावधान। कुछ ही देर के पश्चात लोगो के कान लौह बेड़ियों की खनखनाहट से गूँज उठे। लोग देखने लगे, आँखें फाड़-फाड कर सड़क की ओर। बन्दा अपने सात सौ वीर सिक्खों के साथ बेड़ियाँ

युवक विद्यासागर के चरणों पर गिर पड़ा और उनसे अपने इस अपराध के लिए क्षमा माँगने लगा। विद्यासागर ने उसे प्रेम से उठाते हुये कहा 'क्षमा की कोई आवश्यकता नहीं, केवल उद्योग और आत्म-निर्भरता के पाठ पढ़ो !'

कुछ लोगो का कहना है कि जिस समय की यह घटना है, उस समय विद्यासागर विद्वान होने के साथ ही साथ धारा सभा के सदस्य थे। सचमुच विद्यासागर ऐसे ही थे। उनका सम्पूर्ण जीवन ही सादगी, उद्योग और आत्म-निर्भरता से भरा हुआ है।

आत्म-दृढ़ता

वह एक युग था। पंचनदी क्रीड़ा-स्थली पंजाब मे 'गुरु की जय, वाह गुरु की जय, जय अलख निरञ्जन।' कंठ-कंठ से प्राण-प्राण से यही आवाज निकल रही थी, और हो रहा था, घर-घर मे इसी मंत्र का महा जप ! स्त्री, पुरुष, तरुण, वृद्ध, बालक सभी उच्च स्वर से पुकार रहे थे, जय अलख निरजन !

उसमे जादू था, आकर्षण था ! जिसके अधरों पर वाह गुरु की जय के साथ यह शब्द आता, वह पागल बन जाता। पागल बन जाता, अपने स्वदेश के प्रेम, अपनी मातृभूमि की भक्ति मे। पंजाब के घर घर से ऐसे ही पागल निकलते हुये दिखाई दे रहे थे। उनके सिर मे लम्बे केशों की वेणी बँधी होती, और झूलता रहता था, कमर मे कृपाण। वे एक विचित्र वीर थे, बहुत ही विचित्र। हृदय मे जगत के सारे स्नेह सम्बन्ध को तोड़ कर घर से निकले थे। दृष्टि थी, केवल स्वदेश पर, मातृभूमि पर।

वीर था ? वह आत्म-त्यागी था। बहुत पहले ही सांसारिक ममता को ठोकर मार चुका था।

बन्दा ने हाथ में कटार लेकर बालक की ओर देखा। उसके मस्तक पर हाथ रक्खा, उसके अधरों को चूमा। फिर बोल उठा, 'बेटा, बोल, वाह गुरु की जय, जय अलख निरजन। कुछ डर तो नहीं मालूम हो रहा है ?'

लड़के ने पिता के स्वर को दुहराया, 'वाह गुरु की जय' 'जय अलख निरजन !' साथ ही निर्भय कंठ से बोल उठा, 'डर काहे का पिता जी ! वाह गुरू की जय !'

बन्दा ने बांये हाथ से खींच कर उसे गले से लिपटा लिया और साथ ही दाहिने हाथ से कटार भी भोंक दी।' बालक भूमि पर गिर पड़ा। उस समय भी उसके मुख पर वही था— 'जय अलख निरजन' 'वाह गुरू की जय !'

सारा मुगल दरबार सन्न हो गया। उसी सन्नाटे में लोगों ने यह भी देखा कि महाबीर बन्दा का शरीर टुकड़े-टुकड़े के रूप में पृथ्वी पर पड़ा है और जल्लाद सोच रहा है कि अब क्या करूँ।
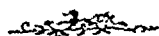
शिवाजी की उदारता

अर्द्धरात्रि का समय था। महाराज शिवाजी अपने शयन-कक्ष में सो रहे थे। कक्ष में धीरे-धीरे एक किशोर बालक ने प्रवेश किया। उसके हाथ में कटार थी, वह महाराज शिवाजी के पलंग के समीप खड़ा होकर उनकी ओर देखने लगा। महा-राज शिवाजी सो रहे थे, गाढ़ी नींद में। बालक सोचने लगा,

खनखनाता हुआ चला आ रहा था। आगे मुगल सेना और पीछे मुगल सेना थी। बीच में थी, वह मतवाली टोली। सबके सब कह रहे थे, "वाह गुरु की जय, जय अलख निरंजन।"

सब के सब कारागार मे डाल दिये गये। उनके लिये सम्राट का आदेश था, कत्ले आम। प्रतिदिन प्रातःकाल सौ-सौ बन्दियों के मस्तक कटने लगे। मृत्यु के समय भी उनके अधरों पर वही स्वर रहता, 'वाह गुरु की जय, जय अलख निरंजन।'

सात दिन के पश्चात्। कारागार सूना हो गया था। सब के सब अपने कर्त्तव्य की वेदिका पर सो चुके थे। बच गया था बन्दा। वही बन्दा, जिसने यह मन्त्र फूंका था, जिसने लोगों को यह रस पिलाया था।

प्रभात का समय था, सूरज की किरणें फूट रही थीं, पक्षी चहचहा रहे थे। लौह बेड़ियों से जकड़ा हुआ बन्दा मुगल दरबार में हाजिर किया गया। उसकी आकृति पर अपूर्व ज्योति थी, अपूर्व आनन्द था। देखने वाले चकित हो उठे। आश्चर्य मे पड़ गये।

काजी ने एक सात वर्ष के सुन्दर बालक को लाकर बन्दा के सम्मुख खड़ा कर दिया। उसने कहा, 'महावीर, कुछ ही क्षण के पश्चात् तू इस संसार से प्रयाण कर जायगा। तुमने बड़ी वीरता दिखलाई है। मुगल दरबार एक बार तेरी वीरता और देखना चाहता है। लो, हाथ मे कटार लो और इस बालक का सिर धड़ से अलग कर दो।'

महावीर बन्दा कोमल शिशु के ऊपर वार करे! किन्तु यह शिशु है कौन ? उसी का पुत्र, उसी का हृदय! उसने बिना किसी भय के काजी के हाथ से कटार ले ली! लोग सोचते थे, बन्दा फिसल जायगा। किन्तु क्या वह फिसलने वाला

नहीं महाराज !—बालक ने उत्तर दिया । जब वृद्ध माँ चारपाई पर पड़ी हुई भूख की ज्वाला से साँसे तोड़ रही हो, तब फिर प्राणों की ममता कैसी ?

किन्तु उससे और मेरी हत्या से क्या सम्बन्ध है युवक—शिवाजी ने आश्चर्य चकित होकर पूछा ।

सम्बन्ध है महाराज, बहुत कुछ सम्बन्ध है—बालक ने दृढ़ता के साथ उत्तर दिया । आप नहीं जानते महाराज, आपही इसके कारण हैं । मेरे पिता आपकी सेना मे नौकर थे । उन्होंने आप ही की सेवा करते-करते अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया है । अब इस संसार मे हम माँ-बेटे को जीवन का कोई अवलम्ब नहीं । माँ कई दिनो से रुग्ण होकर चारपाई पर पड़ी है । तीन दिन से उसके मुख मे एक दाना भी न गया, एक दाना भी न गया !!

बालक की आँखें छलछला उठीं ! उसकी सारी दृढ़ता थोड़ी देर के लिये जैसे सो ही गई । शिवाजी विचार-निमग्न हो गये । कुछ देर तक सोचते रहे, फिर बोले 'किन्तु मेरी हत्या से तुम इस दारुण अवस्था से छुटकारा कैसे पा सकते थे मालो ?'

पा सकता था महाराज—मालो ने उत्तर दिया । आपके शत्रु सुभागराय ने मुझे आपही की हत्या करने के लिये भेजा है । उसने कहा है कि यदि मैं आपके जीवन का अन्त कर दूँ तो वह मुझे अधिक धन देगा ।

शिवाजी आश्चर्य-चकित होकर मालो की ओर देखने लगे । मालो हाथ मे तलवार लिए सिर झुकाये हुये खड़ा था ।

शिवाजी अभी सोच ही रहे थे, कि ताना जी बोल उठे, 'तो अब मरने के लिये तैयार हो जा मालो । तेरे इस भयानक ... महाराष्ट्र को धरती भी काँप उठी है । त आज

क्या चला दूँ तलवार ? अवश्य मुझे धन मिलेगा, गरीबी से जीवन-मुक्त हो जायगा।

बालक की भुजा उठ गई। अभी तलवार ऊपर ही थी कि पीछे से एक मनुष्य ने उसे पकड़ लिया। बालक सशंकित हो उठा। उस मनुष्य ने डाँट कर कहा, हत्यारा।

शिवाजी की आँखें खुल गईं। वे उठकर बैठ गये। उन्होंने देखा, एक किशोर शिशु को पकड़े हुये ताना जी! ताना जी महाराज शिवाजी से एक बहुत ही विश्वस्त सेनापति थे।

महाराज शिवाजी जब तक कुछ बोले, ताना जी बोल उठे, 'यह आपकी हत्या करना चाहता था महाराज! इसे मैंने आप पर प्रहार करते पकडा है।'

बालक के हाथ में तलवार थी। वह चुपचाप खड़ा था। किन्तु उसकी आकृति पर भय न था। वह जैसे कुछ सोच रहा था। शिवाजी ने बालक की ओर देखा और फिर पूछा—तुम कौन हो बालक!'

मेरा नाम मालोजी है महाराज।—लड़के ने उत्तर दिया।

तुम यहाँ किस उद्देश्य से आये थे—शिवाजी ने पूछा।

बालक ने उत्तर दिया, 'आपकी हत्या करने के लिये महाराज!' शिशु की आकृति पर निर्भयता थी, दृढ़ता थी।

क्या तुम जानते नहीं थे, इसका परिणाम क्या होगा?—शिवाजी ने शिशु की ओर देखकर कहा।

जानता था महाराज!—बालक ने उत्तर दिया। पकड़े जाने पर दण्ड, मृत्यु दण्ड।

फिर तुम मेरी हत्या करने के लिये क्यों आये मालो! शिवाजी ने पूछा—क्या तुम्हें अपने प्राणों की ममता नहीं थी!

[प]ड़ा—मैं आ गया महाराज ! मुझे अब मृत्यु दण्ड मिलनी [च]ाहिये ?

ऐसे वीर बालक को शिवाजी मृत्यु दण्ड दे ! न, न, यह [क]भी न होगा ! शिवाजी ने सिंहासन से उतर कर बालक को [ग]ले से लगा लिया। साथ ही उनका हृदय भी अधरों पर बोल [उ]ठा, मालो, तू देश का रत्न है। तेरे ही ऐसे रत्न राष्ट्रमाता [क]ी कुक्षि को उज्वल करते है, उसका मर्यादा बढ़ाते हैं !

शतमन्यु

सत्य का युग था। वही सत्य का युग, जिसमें चारों ओर सुख का सागर-सा लहरा रहा था। किन्तु एक बार उस सत्य के युग मे भी अकाल दौड़ पड़ा ! दौड़ पड़ा मुँह फैला कर। सरिता, सर सभी सूख गये। चारो ओर हाहाकार; चारों ओर त्राहि-त्राहि ! कहीं एक बूँद जल भी न मिलता था। पक्षी, मनुष्य सभी अपने अपने प्राणों के तन्तु तोड़ने लगे।

नृपतियों ने अपने-अपने कोष खोल दिये। बुभुक्षित दल के दल मे नृपतियों के द्वार पर पहुँचने लगे। वे लुटाने लगे, मुक्त हस्त होकर उन्हें अपने कोष किन्तु आखिर कब तक कोष चलते। नृपतियो के कोष भी खाली हो गये, अकाल का मुख फैला ही रहा, फैला ही रहा !

अकाल चारो ओर मुँह फैलाकर दानव की भांति दौड़ रहा था। माता-पिता की आँखो के सामने ही आँखों के तारे दम तोड़ रहे थे। देश के नृपतियों से न देखा गया। उनकी प्रजा लुट रही थी, चारों ओर से भयानक हाहाकार उठ रहा

महाराज की हत्या के रूप में महाराष्ट्र का जीवन दीप बुझाकर उसे सदा के लिये अन्धकार पूर्ण कर देना चाहता था!'

मृत्यु से मैं बिलकुल नहीं डरता—बालक ने दृढ़ता के साथ उत्तर दिया। इस प्रकार की मृत्यु तो क्षत्रियों की जीवन-सङ्गिनी है। किन्तु ·· ···।

महाराज शिवाजी ने सिर ऊपर उठाया, और आश्चर्य चकित होकर बालक की ओर देखा। बालक की आकृति पर ज्योति थी, दृढ़ता थी। वह भीतर ही भीतर शिवाजी के हृदय में घट गई। किन्तु फिर भी उन्होंने बालक के भय को बढ़ाते हुये कहा, फिर किन्तु क्या ?

बालक ने उत्तर दिया, 'मृत्यु के पूर्व एक बार मरती हुई माँ को देखना चाहता हूँ, उसके चरणों को छूना चाहता हूँ! अतः जाने की आज्ञा चाहता हूँ। सवेरा होते होते मैं स्वयं आ जाऊँगा!'

'किन्तु यदि तुम भाग जाओ तो' शिवाजी ने कहा।

'मैं क्षत्रिय बालक हूँ!' बालक ने दृढ़ता के साथ उत्तर दिया, क्षत्रिय बालक कभी झूठ नहीं बोलते। एक बार मुख से जो निकल गया, उसका प्राण-प्रण से पालन करते हैं।

शिवाजी ने मालो को घर जाने की आज्ञा दे दी।

सवेरा हो चुका था। महाराज शिवाजी दरबार में बैठ कर नाना जी के साथ बातें कर रहे थे। इसी समय ड्योढ़ीदार ने आकर सूचना दी, 'महाराज एक बालक आया है। आपसे मिलना चाहता है।'

बालक दरबार में उपस्थित हुआ। बालक कौन था? वही मालो, दरबार में पहुँचते ही उसके मुख से निकल

[ने से इन्द्र प्रसन्न होंगे और जल वर्षा होगी। देश के बच्चे
[म तोड रहे हैं, मातायें भूख की ज्वाला में छटपटा रही हैं।
[रों ओर त्राहि त्राहि मचा हुई है। ऐसे समय मे किस युवक
[की आत्मा शान्त रह सकती है पिता जी! मैं मानता हूँ कि
[म आप दोनों के अकेले हैं, किन्तु आप अपने इस अकेले को
देकर लाखों-करोड़ों के प्राण बचा सकते हैं। जाने की आज्ञा
दीजिये। विलम्ब हो रहा है!'

शतमन्यु आँखों में आँसू भर माँ-बाप के चरणों पर गिर
पड़ा। माँ बाप ने बारी-बारी से उसे अपनी छाती से लगा
लिया और कहा, 'जाओ बेटा, प्रसन्नता पूर्वक जाओ। यदि
तुम्हारे बलिदान से अकाल दूर हो, तो तुम सप्रेम अपने को
[ब]लिदान कर दो। हम दोनों कितने सुखी, कितने भाग्यशाली!
दुख मे आत्रस्त प्राणियों के कष्टों को दूर करने के लिये मेरा
पुत्र अपने प्राणों को यज्ञ की वेदिका पर चढ़ाने जा रहा है।

यहाँ सभा में वही सन्नाटा, वही मौनिमा! सबकी आँखों
के सामने था, नरमेध यज्ञ। पर कौन अपने प्राणों की बलि
चढ़ाये? कौन अपने अमूल्य जीवन को नष्ट करे? फिर क्या
नरमेध यज्ञ न हो सकेगी—ऋषिवर ने पूछा।

'होगी महाराज!'—सभा में एक ओर से आवाज आई।
लोग आश्चर्य-चकित होकर उस ओर निहार उठे। वह
[ए]क ब्राह्मण युवक था—वही शतमन्यु। बडी दृढ़ता के साथ
[ख]डा होकर कह रहा था, 'यज्ञ होगी महाराज। यज्ञ की
[वे]दिका पर उत्सर्ग होने के लिये मेरे प्राण तैयार हैं।'

सभा-स्थल प्रसन्नता और आह्लाद के स्वर से गूँज उठा।
होने लगी शतमन्यु पर पुष्प वर्षा। वह धन्य था, महा धन्य।
संकट में आमस्त मनुष्यों के लिये युवक अपने जीवन क

... सभा की। सभा में राजा थे, ऋषि थे और थे प्रजा के लोग। लोग सोच रहे थे, अकाल से कैसे छुटकारा पाया जाय? कैसे मनुष्यों को बचाया जाय?

एक बूढ़े ऋषि ने उठ कर कहा, 'एक ही उपाय है, केवल एक ही!'

राजा ने पूछा, 'कौन सा ऋषिवर?'

ऋषि ने कहा, 'नरमेध यज्ञ!' मनुष्यों की बलि इन्द्र को चढ़ाई जाय! विश्वास है, वह उससे प्रसन्न होंगे।'

सभा मे सन्नाटा छा गया। लोग सोचने लगे, नरमेध यज्ञ किन्तु इस यज्ञ के लिये मनुष्य कहाँ मिलेगे? कौन प्रसन्नता पूर्वक यज्ञ की वेदिका पर प्राणों को उत्सर्ग करने के लिये ... होगा?

सब के साथ ही साथ सभा में बैठे हुये एक युवक ने भी ऋषि की यह बात सुनी। इसका नाम था शतमन्यु। वह उठ कर सभा से बाहर निकल आया और घर की ओर चल पड़ा।

घर पर उसके वृद्ध माँ-बाप भूख की ज्वाला में तड़प रहे थे, पानी-पानी की चीत्कार से मिट्टी की दीवालों को दहला ... थे। शतमन्यु ने बारी-बारी से दोनों के पैर छूकर कहा, '... माता, अब मैं जा रहा हूँ, सदा के लिये जा रहा हूँ! ... आज्ञा दीजिये!'

तड़पते हुये माता पिता की चीत्कार बन्द हो गई। जैसे ... प्यास विस्मृत-सी हो गई हो, दोनो एक साथ आकुल स्वर में बोल उठे, 'कहाँ जा रहे हो बेटा? अपने मुख से यह कैसी बात निकाल रहे हो?'

'नरमेध यज्ञ मे अपना बलिदान करने के लिये पिता जी!' शतमन्यु ने उत्तर दिया। ऋषिवर ने कहा है कि नरमेध यज्ञ

रने से इन्द्र प्रसन्न होंगे और जल वर्षा होगी। देश के बच्चे
म तोड रहे हैं, माताये भूख की ज्वाला मे छटपटा रही हैं।
ारों ओर त्राहि त्राहि मचा हुई है। ऐसे समय मे किस युवक
ी आत्मा शान्त रह सकती है पिता जी ! मै मानता हूँ कि
म आप दोनों के अकेले हैं, किन्तु आप अपने इस अकेले को
कर लाखों-करोडों के प्राण बचा सकते हैं। जाने की आज्ञा
ीजिये। विलम्ब हो रहा है !'

शतमन्यु आँखो मे आँसू भर माँ-बाप के चरणो पर गिर
ड़ा। माँ बाप ने बारी-बारी से उसे अपनी छाती से लगा
लया और कहा, 'जाओ बेटा, प्रसन्नता पूर्वक जाओ। यदि
ुम्हारे बलिदान से अकाल दूर हो, तो तुम सप्रेम अपने को
बलिदान कर दो। हम दोनों कितने सुखी, कितने भाग्यशाली !
दुख मे आत्रस्त प्राणियों के कष्टो को दूर करने के लिये मेरा
ुत्र अपने प्राणों को यज्ञ की वेदिका पर चढ़ाने जा रहा है।

यहाँ सभा मे वही सन्नाटा, वही मौनिमा! सबकी आँखों
के सामने था, नरमेध यज्ञ। पर कौन अपने प्राणों की बलि
चढ़ाये ? कौन अपने अमूल्य जीवन को नष्ट करे ? फिर क्या
नरमेध यज्ञ न हो सकेगी—ऋषिवर ने पूछा।

'होगी महाराज !'—सभा में एक ओर से आवाज आई !

लोग आश्चर्य-चकित होकर उस ओर निहार उठे। वह
एक ब्राह्मण युवक था—वही शतमन्यु। बड़ी दृढ़ता के साथ
खड़ा होकर कह रहा था, 'यज्ञ होगी महाराज ! यज्ञ की
वेदिका पर उत्सर्ग होने के लिये मेरे प्राण तैयार हैं।'

सभा-स्थल प्रसन्नता और आह्लाद के स्वर से गूँज उठा।
होने लगी शतमन्यु पर पुष्प वर्षा। वह धन्य था, महा धन्य।
सकट मे आग्रस्त मनुष्यों के लिये युवक अपने जीवन का बलि-

दान कर रहा था। सभा मे एकत्र हुये मनुष्य उसे बड़े आश्चर्य और बड़ी श्रद्धा के साथ देख रहे थे और कर रहे थे, उसके जीवन की देवताओं से तुलना।

यज्ञ की तैयारियाँ होने लगी। शतमन्यु बलिदान की सज्जा से सजकर यज्ञ स्तम्भ के समीप जाकर खड़ा हो गया। सभा मे शान्ति थी, निस्तब्धता थी। सब आँखो मे भक्ति भर कर सिर झुका कर खड़े हुये शतमन्यु की ओर देख रहे थे, लोगों ने देखा उस पर आकाश से पुष्प बरस रहे हैं।

लोग आश्चर्य-चकित होकर आकाश की ओर देखने लगे। आकाश के मध्य मे एक ज्योति स्थित थी। उसके साथ और भी अनेक ज्योतियाँ थीं। सभी धन्य और महाधन्य के स्वर के साथ कर रही थीं, शतमन्यु पर पुष्प वर्षा! अन्त मे उस प्रमुख ज्योति ने कहा, 'मैं इन्द्र हूँ। मैं तुम पर अधिक प्रसन्न हूँ बेटा! जिस देश मे तुम्हारे ऐसे युवक हों, वह क्या कभी दुख ग्रस्त रह सकता है? अब यज्ञ की आवश्यकता नहीं शीघ्र ही देश का अकाल दूर होगा।

इन्द्र के आशीर्वाद के साथ ही साथ सघन घन आकाश मे छा गये। जल-वृष्टि होने लगी। लोगों के जाते हुये प्राण पुन: लौट आये और मनुष्य, पशु, तथा पक्षी, सभी करने लगे, आह्लाद से शतमन्यु की कीर्ति गान!

वज्र की कहानी

प्राचीन काल की बात है, अत्यन्त प्राचीन काल की।
देवता और राक्षसों ने मिलकर समुद्र मंथन किया था। समुद्र
मंथन से जो अमृत निकला था, उसे देवताओं ने राक्षसों को
धोखे मे डालकर पी लिया था।

किन्तु राक्षस बड़े शक्तिशाली थे, बडे प्रकाण्ड वीर थे।
स पर भी ज्ञान और चेतना से शून्य। इतने पर भी यदि
हीं उन्हें अमृत मिल जाता, तो फिर क्या ससार की रक्षा
ो सकती ? नहीं, कदापि नहीं। वे ससार को उलट-पुलट देते
और कर देते देवताओं का सर्वनाश।

किन्तु क्या राक्षस शान्त रहे ? नहीं, देवताओं की चालाकी
उनके हृदय मे कॉंटे की भॉंति चुभती रही। चाहे जिस तरह
से हो, वे देवताओं से इसका बदला लेगे, उन्हें इस विश्वास-
घात का स्वाद चखायेगे !

राक्षस मन ही मन अवसर की प्रतीक्षा करने लगे। भीतर
ही भीतर देवताओ के सर्वनाश की तैयारी करने लगे।

उन दिनो असुरों का राजा था वृत्र। बड़ा ही दुर्दान्त, बड़ा
ही प्रतापी और बड़ा ही तेजस्वी। आज तक ऐसा राजा असुरों
के वश मे कभी उत्पन्न नहीं हुआ था।

सुयोग पाकर वृत्र ने देवताओ पर आक्रमण कर दिया।
स्वर्ग मे हलचल मच गई। स्वर्गपति इन्द्र की आँखों मे न नींद,
न मुख में आहार ! चिन्ता की विकराल अग्नि हृदय के कोने-
कोने मे जल उठी। शरीर स्याह पड़ गया, देवताओं ने राक्षसों
का सामना किया। किन्तु अन्त में पराजित हो गये। इन्द्र

को भी प्राणों के लाले पड गये। स्वर्ग को छोड कर किसी प्रकार मृत्यु लोक मे पहुँचे और नैमिषारण्य मे रहने लगे।

स्वर्गपति इन्द्र कल देवताओं के स्वामी थे, स्वर्ग के राजा थे। किन्तु आज नैमिषारण्य मे आश्रय-हीन भिखारी की भाँति घूम रहे हैं। इसी को कहते हैं, नियति का चक्र। अमृत के प्रभाव से अमर हैं, नहीं तो आश्चर्य क्या कि प्राणों से भी हाथ धोते, जीवन को भी खो बैठते!

राक्षसों की स्फूर्ति को क्या कहना? राक्षस अब स्वर्ग के अधिपति थे। स्वर्ग के प्रासाद पर उनकी विजय-वैजन्ती उड़ रही थी। असुरों का स्वामी वृत्र स्वर्ग का राजा। आमोद प्रमोद सुख और आनन्द, जैसे फूटे से पड रहे थे! अब क्या चाहिये? चारों ओर असुरों का राज्य! वे और भी उन्मत्त होकर अत्याचार की सृष्टि करने लगे! देवताओं का नन्दन कानन उजड़ गया, स्वच्छ सलिला मन्दाकिनी धूमिल पड़ गई। किन्तु इतने पर भी असुर शान्त न हुये। वृत्र महिषी इन्द्रिला असुरों की सहायता से इन्द्राणी को नैमिषारण्य से पकड़ लाई, और उसे दासी का काम दिया गया। देवताओं का दर्प चूर्ण हो गया, उनका अस्तित्व धूल मे मिल गया। चारों ओर असुरों का राज्य, उनकी कीर्ति की दुहाई!

देवता भागे-भागे फिर रहे थे। असुरों ने चारों ओर अत्याचार की भयानक आग सुलगा दी थी। इन्द्र के दुख का सीमा नहीं। वृत्र शंकर से वरदान प्राप्त करके अमर बन गया था। उसे कौन मारे, कौन उसका सर्वनाश करे? वरदान की शक्ति से वह अजेय था, अविजित था।

अन्त मे इन्द्र उन्हीं शंकर के पास कैलाश पर्वत पर गये। शंकर एक बहुत बड़े योगी थे। वे इसके पूर्व ही अपनी योग-शक्ति

वे यह जान गये थे, कि वृत्र उनको वरदान-शक्ति को पाकर कितना उद्दण्ड बन गया है, कितना स्वेच्छाचारी हो गया है। इन्द्र को भिखारी के रूप में देखकर उनका हृदय क्रोध से काँप उठा। आँखें जलने लगीं। उन्होंने कहा, 'देवराज मुझे अत्यन्त दुख हो रहा है। मुझे विश्वास न था, कि वह राक्षस वरदान शक्ति को पाकर इस प्रकार स्वेच्छाचारी बन जायगा!

जाने दो, जो हुआ, वह हुआ। जाओ देवराज, मृत्युलोक मे अलकनन्दा नदी के किनारे दधीचि के आश्रम मे जाओ। मेरा परम प्रिय भक्त वही सर्वत्यागी दधीचि यदि देवताओं के कल्याण के लिये स्वेच्छा से अपने शरीर की हड्डियों का दान करे, तभी तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण होगी, तभी देवताओ के दुख दूर होंगे। और फिर जगत आश्चर्य-विमुग्ध होकर देखेगा, कि उस परोपकारी आत्मत्यागी मे कितना तेज है। उसके शरीर की हड्डियों मे कितनी शक्ति है।"

इन्द्र के मन मे कुछ आशा का सचार हुआ। वे शङ्कर को प्रणाम करके दधीचि के आश्रम की ओर चले। मार्ग मे उन्होंने अपने साथ नारद को भी ले लिया।

सन्ध्या हो रही थी। देवराज नारद के साथ दधीचि के आश्रम मे जा पहुँचे। महर्षि ने उनकी आदर-अभ्यर्थना करने के पश्चात् आने का कारण पूछा। देवराज कहें तो क्या कहें? महर्षि की आकृति पर दौड़ते हुये आनन्द को देख कर वे और भी अधिक दुखी हो उठे, उनका चेहरा परिम्लान हो गया।

पर महर्षि से असली बात कैसे छिपी रह सकती थी? उन्होंने ध्यान-शक्ति से सब कुछ जान लिया। उनके चेहरे पर और भी अधिक आनन्द की ज्योति खिल गई। उन्होंने आनन्द की वर्षा करते हुये कहा, 'देवराज! इसके लिये आप सकोच

क्यों कर रहे हैं। आ ा मेरे कितने आनन्द का दिन है ! इतने दिनों के पश्चात् आज मेरा जीवन सार्थक हुआ। मेरे वृद्ध शरीर की हड्डियाँ देवताओ के काम मे आयेंगी, उनसे जगत का कल्याण होगा, इसकी मुझे कभी स्वप्न मे भी आशा नहीं थी !"

महर्षि की वात सुनकर शिष्यों की आँखें सजल हो उठीं महर्षि ने कहा, 'मेरे बच्चो ! आज मेरे सौभाग्य का दिन है फिर तुम्हारी आँखों मे यह आँसू कैसे ? शरीर तो किसी के सदा रहता नही ! इससे बढ़कर और क्या होगा, कि वह दूसरे के काम मे लग रहा है ?

उसी समय सब एक साथ मिलकर उच्च स्वर से भगवान का नाम लेने लगे। और भगवान का नाम लेते ही लेते महर्षि ने अपने शरीर का त्याग कर दिया।

महर्षि के शरीर की हड्डियाँ ले जाकर देवराज ने उन्हें विश्वकर्मा के हाथ मे दिया। उन्ही हड्डियों से विश्वकर्मा ने जो अस्त्र बनाया, वही वज्र है। उसी वज्र से इन्द्र ने वृत्र को मारकर स्वर्ग पर पुनः अपनी सत्ता स्थापित की ! देवताओं के दुःख की काली रात बीती। संसार आत्मत्यागी महर्षि की हड्डियों की शक्ति को देखकर विस्मित हो उठा !

अनेक युग युगान्तर बीत गये, किन्तु आज भी वज्र अपने कड़-कड़ शब्दों द्वारा स्थावर और जङ्गम को विकम्पित कर त्रिभुवन के ऊपर आत्मत्यागी महर्षि दधीचि की त्याग-शक्ति को प्रगट कर रहा है !

वचन का निर्वाह

कई सौ वर्ष पूर्व अरब मे हजरत उमर के प्रताप का डंका बज रहा था। बडे न्यायशील थे, बड़े त्यागी। अरब वाले उन्हें अपना देवता मानते थे, मसीहा। बच्चे, बूढ़े, जवान सभी उनके संकेतो पर नाचने के लिये तैयार रहते, और करते उसमे अपने जीवन महत्व का अनुभव। वे सबके प्राणो में बस रहे थे, प्राणों में।

प्रभात का समय था। हजरत उमर मक्का की मस्जिद में बैठे थे। आस-पास सैनिक सरदार भी बैठे हुये थे। न्याय चाहने वाले द्वार पर खड़े थे, उमर बारी-बारी से सबकी सुन कर सब को न्याय दे रहे थे। लोग प्रसन्न थे, आह्लादित थे। वादी और प्रतिवादी दोनों। ऐसा ज्ञात होता था, मानों हजरत उमर न्याय के रूप मे इन्हें जो कुछ दे रहे थे, वह उनकी भी समझ में ठीक था, उचित था।

उमर न्याय के काम मे संलग्न थे। सहसा उनका ध्यान भंग हुआ। उसने दृष्टि उठा कर सामने की ओर देखा, एक नवयुवक! वह हाथ बाँधे हुये सिर झुकाकर खड़ा था। और दो व्यक्ति उसे पकड़े हुए थे।

उमर ने तीनों व्यक्तियो को ध्यान से देखा, और फिर पूछा कहो, क्या चाहते हो?'

उन दोनों व्यक्तियों ने उमर को सिर झुकाया, और बड़ी ही नम्रता के साथ उत्तर दिया, श्रीमान् हमारा न्याय कीजिये! इस युवक ने हमारे पिता की हत्या कर दी है!'

उमर ने युवक को प्यार से देखा। वह सिर झुकाये

था। उमर ने उसकी ओर देखकर कहा, युवक सुनते हो, ये लोग क्या कह रहे हैं?

युवक ने उत्तर दिया, 'सुनता हूँ श्रीमान्! ये लोग जो कह रहे हैं, वह सच है। मैंने सचमुच इनके पिता की हत्या की है, मैं सचमुच अपराधी हूँ।'

उमर ने पुनः युवक की ओर देखा। युवक अविचलित ढङ्ग से खड़ा था। उमर ने कहा, 'जानते हो इस सम्बन्ध में मेरा न्याय। मृत्यु दण्ड। मैं तुम्हें भी हत्या करने के अपराध में मृत्यु दण्ड दे रहा हूँ।'

युवक ने मस्तक झुका लिया। कुछ देर तक वह मन ही मन सोचता रहा। फिर धीरे से बोल उठा—श्रीमान् का आदेश आँखों पर है। किन्तु एक प्रार्थना है। क्या उसे श्रीमान् सुनेंगे'

उमर ने युवक की ओर देख कर कहा, 'कहो!' 'पिता जी जब मरने लगे थे, तब कुछ सोना छोड़ गये थे। उनकी धरोहर, मैंने भूमि के भीतर गाड़ रक्खी है। यदि तीन दिन की छुट्टी मिल जाती तो मैं वह सोना अपने भाई को सौंप कर पुनः यहाँ हाजिर हो जाता!'

उमर ने युवक को आश्चर्य की दृष्टि से देखा। ऐसी असंभव प्रार्थना, फिर उसने की क्यों? युवक साधारण नहीं! वह मनुष्य है; सचमुच मनुष्य है। उमर कुछ देर सोचते रहे। फिर उन्होंने कहा, 'स्वीकार है तुम्हारी प्रार्थना युवक। किन्तु एक शर्त है।

कौन-सी शर्त श्रीमान्।—युवक ने नम्रता से पूछा।

तुम्हें किसी की जमानत देनी होगी—उमर ने कहा।

युवक चुप हो गया। जमानत उसकी वहाँ कौन करेगा! वहाँ तो उसका एक भी परिचित नहीं! और फिर किसे आदमी के

जमानत, जिसे मृत्यु दण्ड मिला हो! युवक आँखें पसार कर चारों ओर इधर-उधर देखने लगा। उसकी दृष्टि एक वृद्ध मनुष्य पर पड़ी, जो उमर ही के समीप बैठे हुए थे। युवक ने उन्हीं की ओर देखकर कह दिया, 'यही महाशय, मेरी जमानत करेंगे।'

उन वृद्ध का नाम था, अबूजेहल। बड़े ही प्रतिष्ठित थे, बड़े ही दयालु थे। परोपकार ही उनके जीवन का कर्त्तव्य था। उमर भी उनकी प्रतिष्ठा करते थे, उन्हें एक आदरणीय व्यक्ति समझते थे। उमर ने अबूजेहल की ओर देखकर पूछा, 'क्या आप जामिन हो रहे हैं?'

अबूजेहल ने उत्तर दिया, 'मुझे कोई आपत्ति नहीं!'

युवक छोड़ दिया गया।

तीसरा दिन समाप्त हो रहा था। लोग मसजिद में पहुँचे और अपराधी का मार्ग देखने लगे। किन्तु अभी तक वह न आया, उमर ने अबूजेहल की ओर देख कर कहा, 'अपराधी का अब तक कहीं पता नहीं है। कहीं ऐसा न हो, कि उसके बदले में आप ही को मृत्यु दण्ड दिया जाय!'

अबूजेहल समाज के आदरणीय व्यक्ति थे। लोग उनका सम्मान करते थे, उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। अपराधी के न आने पर अबूजेहल को मृत्यु दण्ड होगा, यह सुन कर लोग व्याकुल हो उठे, घबड़ा गये। किन्तु अबूजेहल शान्त थे। उनकी आकृति में न भय था, न आकुलता थी! उमर ने देखा दोनों फरयादी आ रहे हैं, किन्तु अपराधी का कहीं पता नहीं है।

फरियादियों ने उमर के समीप पहुँच कर निवेदन किया, 'अपराधी कहाँ है श्रीमान्! उसे बुलवा दीजिये!'

उमर ने अबूजेहल की ओर देखा। अबूजेहल ने क

इन कहानियों के सम्बन्ध में

ये कहानियाँ दया, सहानुभूति, साहस, न्याय, देश भक्ति, क्षमा, प्रेम और कष्ट सहन की एक तस्वीर हैं जो मानव चरित्र के उज्वल पृष्ठों से ली गई हैं। इसलिये इस पुस्तक का नाम 'चरित्र-निर्माण की कहानियाँ' रक्खा गया है। आप कह सकते हैं कि इन कहानियों की आवश्यकता क्या थी? मैं आप से कहता हूँ कि आप मुझसे यह न पूछ कर अपने जीवन से पूछें। मेरा दृढ विश्वास है कि यदि आप अपने जीवन से पूछेंगे, और पूछेंगे अपनी अन्तरात्मा से तो आपको अपने आप इन कहानियों की आवश्यकता के सम्बन्ध में उत्तर मिल जायगा। यह इसलिये कि आपके जीवन का निर्माण जिस तत्व से होता है, वह प्रचुर परिमाण में इन कहानियों की पंक्ति पंक्ति में समाया हुआ है, आप अपने हृदय को टटोल कर देखें, क्या इन कहानियों के लिये आपका मानव-हृदय निरन्तर प्यास का अनुभव नहीं करता?

आप मनुष्य हैं। आपका काम है, निरन्तर चलना। संसार की परिस्थितियों से युद्ध करना। जीवन-युद्ध में विजयी होने के लिये आप दिन रात कितना प्रयत्न करते हैं, किन्तु कदाचित् आप यह नहीं जानते कि मनुष्य अपने जीवन-युद्ध में विजय कैसे प्राप्त कर सकता है? सुनिये महात्मा बुद्ध क्या कह रहे हैं, 'यदि जीवन-युद्ध में विजय प्राप्त करना चाहते हो तो अपनी जीवन वाटिका को चरित्र के सुन्दर पुष्पों से सजाओ।' महात्मा बुद्ध ही ने नहीं, संसार के अन्यान्य साधकों और कल्याण-चेता मनुष्यों ने भी जीवन की सफलता के लिये चरित्र की महत्ता उद्घोषित की है। आधुनिक युग के अमर तपस्वी महात्मा गाँधी के जीवन की ओर झाँक लीजिये और सुन लीजिये

इसका फरियादियों के ऊपर कुछ ऐसा विचित्र प्रभाव पड़ा
ि उन्होंने उमर से प्रार्थना करके युवक को क्षमा कर दिया।
ाचमुच वह क्षमा ही के योग्य था ?

न्याय

सन्ध्या का समय था। दिल्ली के प्रधान विचारपति काजी
ाव मिर्जा हामिउद्दीन नमाज समाप्त करने के पश्चात् अन्तः-
में बैठ कर हुक्का पी रहे थे। सोने की भाँति चमचमाते हुये
क्के से उनके मुख द्वारा जो धुवाँ उड़ रहा था, वह कस्तूरी
। किसी भाँति कम सुगन्धित नहीं था। आस-पास की हवा
ो भी उसने सुगन्धित बना दिया था, अधिक सुगन्धित !

सहसा द्वारपाल ने भीतर प्रवेश किया। उसने कहा,
'श्रीमान्! मानिकचन्द नामक एक व्यक्ति आया है। आपसे
मिलना चाहता है।'

काजी साहब ने आँखे खोल कर पूछा, "क्या नाम तुमने
बताया ?"

'मानिकचन्द जी।'

'उसने अपने परिचय मे और भी कुछ कहा ?'

'परिचय तो उसने कुछ दिया नहीं। कहा वह बहुत दुखी
है। उसके साथ अधिक अत्याचार हुआ है। आप धर्मावतार
हैं। आपको वह अपनी कष्ट-कहानियाँ सुनायेगा।'

'फिर यहाँ किसलिये ? उससे कहो, अदालत में जाकर
पेशकार के पास दरख्वास्त दे।'

भाई ! कुछ देर तक और रुको। अभी दिन समाप्त नहीं हुआ। यदि अपराधी न आया तो मेरा सिर तो उपस्थित ही है।

अबूजेहल की बात सुन कर लोग और भी अधिक चिन्तित हो उठे। लोग फरयादियो से प्रार्थना करने लगे, 'भाई क्षमाकर दो, अबूजेहल को। यदि कहो तो इसके बदले मे तुम्हें कुछ रुपया दे दिया जाय। किन्तु फरियादियो ने एक न सुनी। उन्होंने कहा, नहीं, मुझे खून का बदला खून चाहिये!

अभी इस प्रकार की बाते हो रही थी, कि युवक आ पहुँचा। वह हाँफ रहा था, और पसीने से लथपथ! उसने उमर के सामने पहुँच कर नम्रता से प्रणाम किया, और कहा, धन्यवाद है, ईश्वर! जो मैं ठीक समय पर आ पहुँचा। मैं पिता की धरोहर अपने भाई को सौंप आया, और उसके जीवन-निर्वाह के लिये भी प्रबन्ध कर दिया। मैं अब मरने के लिये तैयार हूँ। मेरे जामिन को मुक्त कर दीजिये। दण्ड दीजिये।

यह कह कर युवक अबूजेहल की ओर बढा। उसने उसका हाथ चूमते हुये कहा, 'आपसे मेरा बिलकुल परिचय न था। किन्तु आप इतने कृपालु है, कि मेरे जामिन बन गये, ईश्वर आपको इस नेकी का फल देगा।'

अबूजेहल ने लोगों की ओर देखकर कहा, 'सचमुच इस युवक से मेरा कभी का परिचय न था। किन्तु जब इतने मनुष्यों के बीच मे इसने मुझ पर विश्वास किया, तो मैं इस पर कैसे अविश्वास कर सकता था? इसकी आकृति देख करके ही मैंने यह समझ लिया था, कि यह अपने वचन का निर्वाह करेगा।'

पश्चात् मैं उसका मालिक हुआ। कारण, कि मैं ही अपने पिता की एकमात्र सन्तान हूँ। काम काज चलने लगा। विवाह करके सांसारिक धर्म मे भी सलग्न हो गया। आनन्द से कई वर्ष बीत गये। काम-काज की देख भाल मैं अधिक नहीं करता था। बाल्यावस्था से ही धर्म की ओर मेरा अधिक आकर्षण था। रुपये पैसे का हिसाब किताब भी मैं बहुत कम करता था। कुछ पुराने कर्मचारी थे। वही सब काम काज देखते-भालते थे। मैं उन्हीं के ऊपर समस्त भार छोडकर निश्चिन्त मन से ईश्वर की पूजा-आराधना किया करता था। कुछ दिनों के पश्चात् मुझे मालूम हुआ कि कर्मचारी विश्वासघात कर रहे हैं, सब लूट-पाट करके स्वयं ही खा रहे हैं। मैंने सोचा, खाओ। मैं खा रहा हूँ, फिर वे सब क्यों न खायें ? मैं बैठकर खाता हूँ, वे सब काम करके खा रहे हैं। मैं चुप रहा और इसी प्रकार चलता गया। श्रीमान् को याद होगा, पाँच वर्ष हुये दिल्ली मे हैजे का अत्यन्त प्रकोप हुआ था। सहस्रों मनुष्य उसके शिकार हो गये, ईश्वर की इच्छा। उन्होंने मेरी स्त्री, पुत्र और कन्या को भी अपने पास बुला लिया। सब एक एक करके मुझे अकेला छोड़कर चले गये।'

इतना कह कर मानिकचन्द दोनों हाथों से आँखों को बन्द करके रोने लगा।

काजी साहब ने कहा, 'चुप रहो भाई, चुप रहो। ईश्वर ने जो कुछ किया है, शोक के द्वारा उसका प्रतिवाद करना तुम्हें उचित नहीं। शान्त रहो और धीरज धरो।'

कुछ देर के पश्चात् मानिकचन्द ने अपने को सँभाला।

काजी साहब ने कहा, किन्तु तुम्हारे ऊपर अत्याचार क्या हुआ है ?'

मानिकचन्द पुनः कहने लगाः—

द्वारपाल ने विनम्रता प्रकट करते हुये कहा, 'श्रीमान्, उसने कहा है कि वह जो कुछ कहेगा, वह बहुत ही गोपनीय है। वह श्रीमान् के अतिरिक्त और किसी दूसरे व्यक्ति पर उस बात को प्रकट करना नहीं चाहता। बहुत ही रो रहा है। उसके ऊपर अधिक अत्याचार हुआ है।'

काजी साहब ने कुछ देर तक सोचने के पश्चात् कहा, अच्छा उसे बाहर के कमरे मे बैठाओ। कुछ देर मे मैं वहीं आ रहा हूँ!

द्वारपाल प्रणाम करके चला आया।

काजी साहब कुछ देर तक आनन्द से हुक्का पीते रहे। तत्पश्चात् उठे, और धीरे-धीरे चल कर बाहर के कमरे में पहुँचे।

मानिकचन्द बैठा हुआ था। उसने उठ कर काजी साहब को प्रणाम किया। "बैठो बैठो"—कह कर काजी साहब स्वयं भी बैठ गये।

काजी साहब ने उस व्यक्ति को देखा। उसकी अवस्था रही होगी, लगभग पचास वर्ष के। सूरत शक्ल से अच्छा आकृति से दीनता टपक रही थी। काजी साहब ने पूछा, आप क्या चाहते हैं?'

मानिकचन्द ने उत्तर दिया, "मैं न्याय चाहता हूँ श्रीमान्, मुझ पर अधिक अत्याचार हुआ है!"

'क्या हुआ है, साफ-साफ कहिये!"

मानिकचन्द ने अपनी कहानी आरम्भ की:—

"श्रीमान्, मैं तीन-चार पुश्त से दिल्ली नगर में रह रहा हूँ। मेरे पूर्वज चाँदी का व्यापार करते थे। पिता की मृत्यु

याय]

था। उनसे रसीद माँगते हुये मेरे मन को संकोच हुआ।
उन्होंने स्वयं ही कहा था, रसीद लेकर क्या करोगे? मैं वही-
खाते मे जमा करा देता हूँ। मैंने भी लज्जा वश कह दिया,
रसीद लेकर क्या करूँगा? स्थान-स्थान मे घूमूँगा। कौन
ने रसीद कहीं खो जाय।

काजी साहब ने पूछा, "फिर क्या हुआ?"

"इसके पश्चात् मैं बचे हुये रुपये को लेकर तीर्थयात्रा करने
के लिए निकला। तीन वर्ष तक तीर्थों मे परिभ्रमण करने के
पश्चात् एक सप्ताह हुए दिल्ली वापस आया हूँ। राम-जानकी
का मन्दिर बनवाने के लिये जमुना किनारे एक स्थान ठीक
करके मैं कल रुपया लेने के लिये गया। किन्तु काजी साहब
क्या कहूँ, भवानी शङ्कर ने बिल्कुल अस्वीकार कर दिया।
उन्होंने कहा, कहीं तुम पागल तो नहीं हो गये हो, जो ऐसी बात
कह रहे हो। मुझे दुतकार दिया। काजी साहब, यदि आप दया
न करेंगे तो मेरा उद्धार न होगा, मेरे रुपये न मिलेंगे।"

काजी साहब ने पूछा, 'अच्छा रसीद नहीं ली न सही।
रुपया जमा करने के समय वहाँ कोई उपस्थित था?'

"कोई नहीं था। केवल मैं और वह।"

"फिर बताइये साहब, मैं क्या कर सकता हूँ? न रसीद,
न गवाह। किस प्रकार मैं आपका रुपया दिला सकता हूँ।"

मानिकचन्द ने कहा, "फिर क्या दिल्ली नगर मे श्रीमान्
के न्याय के रहते हुये गरीब के ऊपर अत्याचर होगा! कोई
उपाय कीजिये धर्मावतार!"

काजी साहब ने अनुचर को बुला कर कहा, "चिलम बदल
दो।" फिर उन्होंने कहा, 'अच्छा मैं सोचूँगा। कल संध्या समय

"स्त्री, पुत्र और कन्या की मृत्यु के पश्चात् कुछ दिनों तक मैं पागलों की भाँति घूमता रहा। अन्त में मैंने सोचा, ईश्वर की इच्छा नहीं थी, कि मैं सांसारिक-बन्धनों मे जकड़ा रहूँ इसीलिये एक-एक करके उन्होंने सभी बन्धन काट दिये। अब सांसारिक ममता की ओर न आकृष्ट रहूँगा। जीवन के शेष भाग ईश्वर की पूजा-आराधना मे बिता दूँगा। यह सोचकर मैंने दूकान बेच दी। घर की अनेक वस्तुओं को भी बेच दिया। इससे एक लाख से भी अधिक रुपये मिले। सोचा कुछ दिनों तक तीर्थों में परिभ्रमण करने के पश्चात् आऊँगा और एक देव मन्दिर की स्थापना करके पूजा आराधना में अपना समय बिताऊँगा, फिर सोचने लगा, इतने रुपये को रक्खूँगा कहाँ? दिल्ली मे मेरे एक धनी बन्धु हैं। विद्वान भी अधिक हैं। नाम है, उनका भवानीशङ्कर।"

काजी साहब बीच ही मे बोल उठे, "कौन भवानी शङ्कर जो चाँदनी चौक मे रहते हैं।"

"हाँ, वही भवानी शङ्कर। चाँदनी चौक में उनका बहुत बड़ा मकान है।"

काजी साहब ने कहा, "ठीक, मैं उनसे परिचित हूँ।"

मानिकचंद ने कहा, "भवानी शङ्कर मेरे बाल-सहचर हैं हम दोनों की लिखाई-पढ़ाई एक ही पाठशाला में हुई है। मैंने सोचा, भवानी शङ्कर के पास एक लाख रुपया रख दूँ, लौटकर फिर उनसे ले लूँगा।" यह सोचकर मैं उनके पास गया, और उन्हें सब बताकर मैंने उनके हाथ एक लाख रुपये जमा कर दिया।

काजी साहब ने पूछा, "रसीद ले ली थी?"

मानिकचंद ने कहा 'मैं उन्हें अपना बाल साथी समझ

पत्र पाकर भवानी शङ्कर बड़ी चिन्ता में पड़ गये। सहसा ाजी साहब इस प्रकार क्यों बुला रहे हैं? क्या मानिकचन्द जाकर मेरी कुछ शिकायत कर दी है। कहीं उन्होंने उसका पया लौटालने के लिये अनुरोध प्रगट करने के लिये तो नहीं ुलाया है!

संध्या होते ही भवानी शङ्कर काजी साहब के पास जा हुँचे। काजी साहब अत्यन्त प्रेम-भाव से बात-चीत करने लगे। न्त मे उन्होंने कहा, 'देख रहे हैं न बाबू साहब, नगर मे किस कार जाल फरेब और धोखेबाज़ी का बाजार गरम है।'

भवानी शङ्कर—"हाँ साहब, देख तो रहा हूँ। धर्म कर्म सातल मे चला गया है। पाप की अधिक वृद्धि हो चली है"

काजी—"मामिले-मुकद्मे इतने बढ गये हैं कि काम करते-करते मेरे प्राण निकले जा रहे हैं! अभी उस दिन मुझे बादशाह के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मैंने उन्हें भी ये सभी बातें बताईं। उन्होंने सुन कर कहा, अपने दो सहायक रख लीजिये काजी साहब! इससे आपको परिश्रम कम करना पड़ेगा और मुकदमे का फैसला भी शीघ्र होगा। इन दोनों योग्य व्यक्तियों के चुनाव का भार मैंने आप ही के ऊपर छोड़ दिया। आप इस तरह के दो व्यक्तियो को चुने जो विद्वान हो, धार्मिक हों, और जिन पर शत्रु-द्वारा कभी किसी प्रकार का कोई कलंक न आरोपित किया गया हो। राज्य-कोप से उन्हें अच्छा वेतन भी मिलेगा। बादशाह ने मुझसे यह भी कहा था कि इन दो व्यक्तियों मे एक हिन्दू हो, दूसरा मुसलमान। भवानी-शङ्कर जी, मेरी दृष्टि मे तो दिल्ली मे आप से बढ़कर योग्य हिन्दू कौन मिलेगा? आप विद्वान हैं, धार्मिक हैं, ज्ञानी हैं। आप इस पद को स्वीकार कर ले। मुसलमान की खोज मैं क-

तुम फिर आकर मुझसे मिलो ! सावधान ! मेरे पास आकर तुमने मुझे ये सब बातें सुनाई हैं, यह किसी को ज्ञात न होने पावे। जाओ, इस समय जाओ।"

मानिकचद काज़ी साहब को नम्रतापूर्वक प्रणाम करके चला गया।

काज़ी साहब हुक्के की निगाली मुँह मे लेकर सोचने लगे। कुछ देर के पश्चात् अपने ही आप बोल उठे, "ठीक हो गया, बस हो गया।"

दूसरे दिन सन्ध्या समय मानिकचद पुनः आकर उपस्थित हुआ। काज़ी साहब ने पूछा, 'आज कौन-सा दिन है ?"

'आज मङ्गलवार है श्रीमान् !"

"परसों वृहस्पतिवार के सायकाल तुम पुनः भवानी शङ्कर के पास जाओ और उनसे अपना रुपया माँगो। यदि वह फिर अस्वीकार करे तो कहना कि मैं दिल्ली के प्रधान विचारपति काज़ी साहब के दरबार मे तुम पर नालिश करूँगा। कल शुक्रवार को अदालत बन्द है। परसों शनिवार को मैं निश्चय ही तुम्हारे ऊपर नालिश कर दूँगा। यह कहकर तुम अपने घर लौट आना !"

जो आज्ञा श्रीमान् !—यह कहकर मानिकचद अपने घर चला गया।

दूसरे दिन काज़ी साहब ने मुन्शी भवानी शङ्कर को निम्न-आशय का एक पत्र लिखा:—

"भाई !

बहुत दिन हुये, आपके दर्शन न हुये। आज संध्या समय मेरे घर पधारें, तो बड़ी कृपा हो। आवश्यक बातें हैं।"

सोमवार के सध्या समय भवानीशकर ने काजी साहब के पास जाकर पूछा 'बादशाह ने आदेश पत्र जारी किया या नहीं ? मुझे कब से इजलास करना होगा ?'

काजी साहब ने दुखी होकर कहा, 'बादशाह ने स्वीकृति नहीं दी। बादशाह ने कहा, देश मे अकाल पड़ा है। प्रजा भूख से मर रही है। उसके लिये भोजन का प्रवन्ध करने ही मे कोष समाप्त हो जायगा। फिर नये कर्मचारियो को वेतन कहाँ से मिलेगा ? इसलिये अभी कोई नया कर्मचारी न नियुक्त किया जाय।'

युवक का साहस

कोरिया पर जापानियो का राज्य था। गुलामी की वेदना देश के हृदय को मथ रही थी, प्राण-प्राण मे आकुलता उत्पन्न कर रही थी। लोग उससे मुक्ति पाना चाहते थे, दासता की बेड़ियो को तोड़ कर स्वतन्त्र होना चाहते थे। इसके लिये चल रहा था, उनका प्रयत्न। किन्तु जापानी उनके प्रयत्न को तोड़ रहे थे, उनके साहस को ढीला बना रहे थे।

कोरिया मे एक नगर है, सीउल। एक दिन इसी नगर के एक ऊँचे मकान के भीतर कमरे मे बैठकर एक युवक पुस्तक पढ़ रहा था। युवक का नाम था, कुरोट, और पुस्तक का नाम था, 'कोरिया की करुण-कथा'। पुस्तक जब्त थी। जापान की सरकार उस पुस्तक मे लिखी हुई कोरिया के देश-भक्तो की करुण कहानियाँ भी कोरिया वालो को नहीं पढ़ने दे रही थी। दासता ऐसी ही होती है।

लूँगा। सोमवार को बादशाह ने मुझे फिर बुलाया है। उसी दिन आपको आदेश-पत्र प्राप्त हो जायगा।"

दिल्ली नगर के काजी के सहायक का पद! वेतन का वेतन और रोब का रोब। सारा दिल्ली नगर मस्तक झुकायेगा। भवानी शङ्कर ने काजी साहब को धन्यवाद देकर अपनी स्वीकृति दे दी।

बृहस्पतिवार के सन्ध्या समय मानिकचन्द पुनः भवानी शङ्कर के द्वार पर गया। रुपया माँगने पर भवानी शङ्कर ने फिर उसे दुतकार दिया, और वह शनिवार को नालिश करने की धमकी देकर अपने घर चला गया।

मानिकचन्द धमकी देकर चला गया। भवानी शङ्कर को अब जैसे ज्ञान-सा हुआ! वह सोचने लगा, हाय मैंने यह क्या किया? शनिवार को यदि यह दुष्ट काजी साहब की अदालत में मेरे ऊपर नालिश कर देगा, तो इसमें सन्देह नहीं कि काजी साहब के मन में मेरे प्रति सन्देह उत्पन्न हो जायगा। ऐसा होने से यह हो सकता है कि मैं सहायक काजी के पद से वञ्चित रह जाऊँ। इससे अच्छा तो यही है कि मानिकचन्द के एक लाख रुपये का लोभ छोड़ दूँ। कहाँ सहायक काजी का पद और कहाँ एक लाख रुपया। उस पद को प्राप्त करके न जाने कितने लाख रुपये पैदा करूँगा!"

दूसरे दिन सबेरा होते ही भवानी शङ्कर ने नौकर भेज मानिकचन्द को बुलवाया और कहा, भाई मैं देख रहा हूँ, तुम मुझ पर अधिक अप्रसन्न हो। मैं तो तुम्हारे साथ हँसी कर रहा था। ले जाओ, अपने लाख रुपये।

मानिकचन्द रुपया लेकर अपने घर चला गया।

किन्तु कुरोट उस पुस्तक को पढ रहा था। वह पुस्तक पढता जाता था, और सशंकित चित्त से बाहर की ओर देखता जाता था। उसे अपने पिता से भय था। उसके पिता सरकारी सेना मे एक बहुत बडे अफसर थे। उन्हें सरकार की सेवा अभीष्ट थी। किन्तु युवक कुरोट को यह बिलकुल अच्छा न लगता। उसके हृदय मे देश का प्रेम था, मातृभूमि की भक्ति थी। देश और मातृभूमि के ऊपर प्राणों को उत्सर्ग करने वालों को वह अपने जीवन से भी अधिक प्यार करता था। वह अपने पिता से छिप कर उन्हीं के साथ रहता और उन्हीं के साथ मिलकर देश की सेवा भी किया करता था।

युवक पुस्तक पढ़ने मे सलग्न था। सहसा उसके पिता, नोरो, उसके कमरे मे आ गये। उन्होने देखा, 'कुरोट पढ़ रहा है, कोरिया की करुण कथा।' नोरो की आँखों से चिनगारियाँ सी निकलने लगीं। वह गरज कर कुरोट पर टूट पड़ा। पुस्तक छीन कर दूर फेंक दी। उसे डाँटने-फटकारने लगा। इतने से भी जब सतोष न हुआ, तब उस पर प्रहार भी किया।

किंतु कुरोट अपनी देश भक्ति से विचलित न हुआ। वह बराबर देश की सेवा करता गया, मातृभूमि के उद्धार के गीत गाता रहा।

वह एक दिन था, पहली मार्च का। देश के नेताओं ने निश्चय किया था कि पहली मार्च को जुलूस निकलेगा और फहराया जायगा। देश-भक्तों का यह निश्चय सरकार अधिक बुरा मालूम हुआ। सरकार ने उस पर प्रतिबन्ध हुये घोषणा कर दी, जो जुलूस मे सम्मिलित होगा, सिर धड़ से अलग कर दिया जायगा।

किन्तु क्या जुलूस रुका? नहीं; ऐसा जुलूस भी क्या कहीं

रुकता है। देश-भक्त भीतर ही भीतर प्रयत्न करने लगे। सरकार भी अपनी आज्ञा का पालन कराने के लिये तत्पर हो उठी। जुलूस जब निकला तब भला कुरोट उसमे सम्मिलित होने से कब बाज रहता ? इसी आशका से नोरो ने कुरोट को एक कमरे मे रस्सी से कसकर बाँध दिया।

संध्या का समय था। पहली मार्च को ठीक समय पर देश-भक्तों का जुलूस निकला। सब के हाथ मे देश का एक एक झण्डा था, और सब कर रहे थे, कोरिया की जय जयकार। जुलूस अभी कुछ आगे बढ़ा ही था कि सरकारी सेना भी अपना कार्य करने के लिये सामने आ डटी।

कुरोट के कानो मे भी जय जयकार की ध्वनि पड़ी। उसकी आत्मा विकल हो उठी, प्राणों मे हलचल मच गई। अन्तर-अन्तर मे एक भयानक तूफान, रग-रग मे एक बिजली! वह दाँतों से रस्सी काटकर मुक्त हो गया, और किसी प्रकार कमरे से निकल कर जुलूस मे जा पहुँचा। उसके हाथ मे भी कोरिया का झण्डा था।

सेना जुलूस को रोक रही थी किन्तु जुलूस जय जयकार के साथ कर रहा था, आगे बढ़ने का प्रयत्न। सेना ने गोलियाँ बरसानी आरम्भ कर दी। देश-भक्त हाथ में झण्डे लिये हुये पृथ्वी पर गिरने लगे, मातृभूमि को चूमने लगे। थोड़े ही देर मे भूमि पर लाशो का ढेर लग गया।

सिपाही दौड़-दौड़ कर लोगो के हाथ से झडे छीन रहे थे। एक सिपाही ने कुरोट को भी जा पकड़ा। उसके भी हाथ मे देश का झंडा था। सिपाही ने गरज कर कहा, 'झडा फेंक दो।'

यह नहीं हो सकता, कुरोट ने दृढ़ता के साथ उत्तर दिया 'झंडा तो मेरी नाक है।'

सिपाही ने तलवार उठाई, और एक ही झटके में कुरोट की नाक काटली, और फिर कहा, 'अब बोलो! झंडा फेंकते हो, या नहीं!

कुरोट रक्त में सना हुआ था। उसने उत्तर दिया, 'नहीं, अब भी नहीं। झंडा तो मेरा हाथ-पैर है।'

सिपाही की तलवार फिर उठी। थोड़ी देर के पश्चात कुरोट के हाथ-पैर भी गायब थे। अब कुरोट ने झंडे को दाँतों से पकड़ लिया था। सिपाही ने कुरोट के हाथ-पैरों को काट कर पूछा, 'अब बोलो? अब तो हाथ-पैर भी न रहे। झंडा फेंकते हो या नहीं।'

कुरोट ने दृढ़ता के स्वर में उत्तर दिया, 'नहीं, कदापि नहीं, झंडा मेरा प्राण है। जब तक शरीर में प्राण है, मैं झंडे को न छोड़ूँगा, न छोड़ूँगा।'

सिपाही की तलवार फिर उठी, और इस बार उसने कुरोट के सिर ही को काट डाला। कुरोट का सिर भूमि पर गिर कर तड़पने लगा। किन्तु अब भी उसके दाँतों में देश का झंडा था। मानों अब भी वह सिपाही को ललकार रहा हो!

कुरोट का बाप गोरो भी वहाँ उपस्थित था। वह सरकारी सेना का एक बड़ा अफसर था। वह कुछ दूर पर खड़ा होकर अपने लड़के का वीरता-पूर्वक बलिदान देख रहा था। जब कुरोट का सिर भूमि पर गिर पड़ा, तब उससे न रहा गया। उसकी आँखें खुल गई! उसने उसी सैनिक वेश में दौड़कर [illegible]िया के झंडे को अपने हाथ में ले लिया, और कहा, 'अब इस झंडे का रक्षक मैं हूँ।'

सिपाही चकित हो उठा। कुछ देर तक चुप रहा। फिर कहने लगा, 'छोड़ दीजिये इस झण्डे को। नहीं तो, आपके साथ भी मुझे ऐसा ही व्यवहार करना पड़ेगा।'

नोरो ने गर्व से छाती फुलाकर उत्तर दिया, 'यह नहीं हो सकता। झण्डे के लिये मेरा भी सिर समर्पित है।'

थोड़ी ही देर के पश्चात् लोगों ने देखा कि नोरो का भी सिर भूमि पर पड़ा छटपटा रहा है।

धन्य थे वे पिता-पुत्र!

अन्धा राजकुमार

वह राजकुमार था, प्रतापी अशोक का, उनके जीवन-साम्राज्य का। नाम था कुणाल। अशोक उसका अधिक सम्मान करते, उसे अपने अन्तर मे छिपा कर रखते। वह था भी इसी के योग्य। गुण मे, सुन्दरता में, मानवता में अद्वितीय था, बेजोड़ था। पिता की बात-बात पर, आज्ञा-आज्ञा पर, प्राणो को उत्सर्ग करने के लिए तैयार रहता था। कण्ठ इतना मधुर था, कि जब गाने लगता, तब मानो अमृत का सावन-सा बरसने लगता। कण्ठ मे माधुर्य, आँखों मे सौन्दर्य! जो देखता वह रीझ जाता और कह उठता, 'कुणाल मनुष्य रूप में देवता है, देवता।

उसकी स्त्री कचना भी ऐसी ही थी। सुन्दरी, गुणवती और रूपवती। दोनो की समान जोड़ी थी, अद्वितीय। अशोक प्रतिक्षण इस जोड़ी पर अपने जीवन को लुटाया करते थे। उनके जीवन का सारा सुख, सारा आनन्द, इसी जोड़ी पर निछावर था। यह जोड़ी उनके जीवन की निधि थी, महानिधि।

अशोक इस जोड़ी को देख कर निहाल होते, अपने जी को धन्य समझते। किन्तु तिष्यरक्षिता उन्हें देखकर भीतर भीतर जला करती थी, ईर्षा की अग्नि मे, डाह की ज्वाला में। वह अशोक की स्त्री थी, कुणाल की विमाता। वह कुणाल से जलती थी, किंतु कुणाल के मन में उसके प्रति भक्ति थी, श्रद्धा थी। वह अपने पिता के समान ही उसे भी सम्मान की दृष्टि से देखता था, उसका भी आदर किया करता था।

कुणाल की सौंदर्यमयी आँखें। तिष्यरक्षिता कभी छुप कर जब उन आँखों की ओर देखती, तब उसके हृदय मे एक आह सी निकल पड़ती। वह सोचने लगती, यदि कुणाल का प्रेम मिलता, तो जीवन कितना धन्य हो उठता! उसके हृदय मे एक ज्वाला-सी जला करती थी, एक आग सी उठा करती थी।

आखिर तिष्यरक्षिता से न रहा गया। एक दिन उसने कुणाल को अपने भवन मे बुलाया। कुणाल ने तिष्यरक्षिता को प्रणाम करते हुये कहा, 'आज्ञा दीजिये माता जी!'

तिष्यरक्षिता ने आँखो मे एक विचित्र भावना भर कर कुणाल की ओर देखा। कुणाल की आत्मा तक काँप उठी। तिष्यरक्षिता कुछ देर तक कुणाल की ओर देखती रही, और फिर ललचाई हुई दृष्टि से बोल उठी, 'माता नहीं कुणाल, कुछ और!'

कुणाल आश्चर्य-चकित होकर तिष्यरक्षिता की ओर देखने लगा! उसकी समझ ही मे न आया कि तिष्यरक्षिता क्या कह रही है। वह किंकर्तव्यविमूढ़ होकर उसकी गति-विधि देखने लगा। तिष्यरक्षिता फिर बोल उठी, 'चुप क्यों हो कुणाल! इसी सुधा सिंचित स्वर मे एक बार कहो, प्यारी तिष्यरक्षित

तुम्हारे मुख से यह सुनने के लिये कब से मेरे प्राण व्याकुल हो रहे हैं, कब से मेरा हृदय तड़प रहा है।'

कुणाल दो कदम पीछे हट गया, और सिर झुका कर बोल उठा, माता जी, माता जी !! आज आपको क्या हो गया है ? आज आप यह क्या कह रही हैं ! एक पुत्र से इस प्रकार की बात-चीत ! नीचे भूमि है, ऊपर आकाश, फट पड़ेगा, मात जी, फट पड़ेगा !'

'फटने दो कुणाल !'—तिष्यरक्षिता ने हाथ बढ़ाते हुये क 'तुम चिन्ता मत करो। आओ मेरे हृदय से लग कर मेरे ह की आग बुझाओ।'

कुणाल पीछे हट गया। उसके अन्तर का कोना-कोना तक कम्पित हो उठा। उसने आँखा मे रोष भर कर कहा, "लज्जा कीजिये माता जी, लज्जा कीजिये ! धरणी काँप उठेगी, आकाश गरज पड़ेगा और ससार की धुरी तक हिल जायगी, हिल जायगी !"

कुणाल राज-भवन से चलता बना। तिष्यरक्षिता ने आहत सर्पिणी की भाँति फुफकार कर कहा, "सोच लो कुणाल, सोच लो !! जानते हो इसका क्या परिणाम होगा ? आज मैं तुम्हारी जिन आँखों पर लट्टू हूँ, उनको पैरों के नीचे कुचल दूँगी, मल दूँगी !"

कुणाल ने रुक कर कहा, "चिंता की बात नहीं माँ ! एक माता का उपहार समझ कर कुणाल उसका स्वागत करेगा, उसे सिर आँखों से लगायेगा !"

कुणाल राजभवन के बाहर निकल गया, और तिष्यरक्षिता फुफकार मारती ही रह गई।

अब तिष्यरक्षिता हो गई, कुणाल की शत्रु। वह चाहती थी कुणाल का सर्वनाश हो, शीघ्र से शीघ्र सर्वनाश हो। वह इसके लिये प्रयत्न भी करने लगी और रहने लगी, अवसर की प्रतीक्षा में।

तिष्यरक्षिता, सम्राट अशोक का प्राण, उनका हृदय। वे उससे राज-काज में भी सहायता लेते थे। एक दिन अशोक के पास तक्षशिला के राज्याधिकारी का एक पत्र आया। उसमें लिखा था, "तक्षशिला की सीमा पर शत्रु उपद्रव मचा रहे हैं। शीघ्र सहायता भेजिये।"

अशोक ने यह पत्र तिष्यरक्षिता को दिखलाया। तिष्यरक्षिता मन ही मन कुछ देर तक सोचती रही। उसने सोचा, कुणाल को दण्डित करने का यह अच्छा अवसर है। फिर वह बोली, महाराज! क्या आप मेरी बात मानेंगे?

'क्यों नहीं तिष्यरक्षिता!–अशोक ने उत्तर दिया–'तुम्हारी बात क्या मैंने कभी नहीं मानी है?'

'अच्छा तो महाराज!–तिष्यरक्षिता ने कहा–'आप कुणाल को तक्षशिला में भेज दीजिये, कुणाल सयाना हो गया है। वहाँ जाकर वह राज्य संचालन का कार्य सीखेगा, और उसका अनुभव भी बढ़ेगा।"

महाराज अशोक को भी तिष्यरक्षिता की यह राय पसन्द आ गई। उन्होंने कुणाल को बुलाकर तक्षशिला जाने की आज्ञा दे दी। कुणाल दूसरे ही दिन अपनी स्त्री कंचना के साथ तक्षशिला चला गया। वहाँ जाकर उसने उपद्रवों को दबाया, और सुख और शान्ति स्थापित की। सब कुणाल की जय-जय करने लगे, उसे अपने जीवन का नेता समझने लगे।

पर इधर तिष्यरक्षिता के हृदय मे ईर्षा की आग जलती रही। वह बराबर कुणाल के सर्वनाश का उपाय सोचती रही। तिष्यरक्षिता अशोक के हृदय मे निवास करती थी। राज्य-संचालन में भी बहुत कुछ उसी का रुख देखा जाता था। उसके बहुत कुछ कागज-पत्र और मुहरें, उसी के भवन मे रहती थीं। वह उनका मनमाना उपयोग भी किया करती थी।

एक दिन तिष्यरक्षिता ने एक कर्मचारी को बुलाकर उसे एक पत्र दिया, और कहा, 'इसे शीघ्र तक्षशिला के राज्य-नायक के पास ले जाओ।'

वह राज्य की ओर से एक आदेश-पत्र था। उसमे लिखा था, 'कुणाल राज्य का बहुत बड़ा अपराधी है। उसकी आँखें निकाल कर शीघ्र से शीघ्र यहाँ भेज दो।' आदेश-पत्र पर सम्राट के हस्ताक्षर की मुहर भी लगी हुई थी। कर्मचारी आदेश-पत्र को लेकर तक्षशिला चल पड़ा। महाराज अशोक को इसका बिलकुल पता तक न था।

तक्षशिला का राज्यनायक। उसके पैरो के तले की पृथ्वी खिसक गई। सम्राट अशोक की ओर से राजकुमार कुणाल की आँखे निकलवाने की आज्ञा। किन्तु इस आज्ञा का पालन कैसे हो सकता है। किसमे साहस है जो कुणाल ऐसे देवता सरीखे मनुष्य की आँखे निकाले! पर सम्राट की आज्ञा! राज्य-नायक चिन्तित हो उठा।

वह आदेश-पत्र लेकर राजकुमार कुणाल के पास गया। कुणाल ने उस आदेश-पत्र को देखकर सब कुछ जान लिया। किन्तु वह चुप रहा। उसने उस आदेश-पत्र के सम्मुख सिर झुका कर कहा, "नायक जी! चिन्तित न होइये। अपने कर्त्तव्य

का पालन कीजिये। यह सम्राट का आदेश है। सम्राट आदेश का पालन करना आपका कर्तव्य है।"

सम्राट का आदेश था ही। राज्य-नायक विवश हो उठा उसने वधिक को बुलाकर कुणाल की आँखें निकलवा लीं।"

अपने राज-भवन मे कुणाल रक्त से लथ-पथ, आँखों शून्य !! कचना आकुल होकर गिर पड़ी। लगी विलख-विलख कर रोने। कुणाल ने उसे समझाते हुये कहा, 'न रोओ कंचना ईश्वर की जो इच्छा होती है, वही होता है। चलो, हम दोनों अपने भाग्य पर ससार मे निकलें, भटक-भटक कर सुख और शान्ति की खोज करें।'

कुछ ही देर के पश्चात् दोना राज भवन को छोड़ कर पथ पर चल रहे थे। बिलकुल भिखारी की तरह, कङ्गालों की भांति गली-गली वीणा बजाते और गाते फिरते थे। जो कुछ मिल जाता, उसी से अपना पेट पालते, अपने जीवन का निर्वाह करते !!

यही उनके जीवन का क्रम था, यही उनके जीवन का आधार था। कुछ वर्षों तक यही चलता रहा। अन्त में एक दिन भटकते-भटकते अशोक की राजधानी पटना मे जा पहुँचे घूमते-घूमते राजभवन के पास से होते हुये राजकीय अस्तबल के पास गये। सन्ध्या निकट थी, सूर्य अस्त होते जा रहे थे। कंचना ने हाथ जोड़कर अस्तबल के पहरेदार से कहा, "क्या रात भर मुझे यहाँ ठहरने की आज्ञा देंगे ?"

पहरेदार ने पहले तो झिड़क दिया, किन्तु जब दोनों अति प्रार्थना करने लगे, तब पहरेदार ने थोड़ी-सी जगह अस्तबल के एक कोने में दे दी।

[आ]धी रात बीत चली थी। कुणाल के पास सितार देखकर [पहरेदा]र ने कहा, 'सूरदास क्या कुछ गाना भी गाते हो?'

[']कुछ गा लेता हूँ भाई!—कुणाल ने उत्तर दिया!

अच्छा एक भजन सुनाओ तो—पहरेदार ने कहा।

कुणाल ने सितार उठाया। तारों पर उँगलियाँ दौड़ने लगीं, [और] उन्हीं के साथ स्वर छिटककर चारों ओर गूँज गया— [']नाथ! अब कब सुधि लैहो!' रात की निस्तब्धता में स्वर [गूँज]ता हुआ राज-भवन में भी जा पहुँचा। सोये हुये सम्राट [अ]शोक उठकर बैठ गये। सोचने लगे, "किसका स्वर है? [जो अ]न्तर-अन्तर को वेधता जा रहा है।"

अशोक से न रहा गया। वे बाहर निकले और स्वर के [स]हारे चल पड़े, अस्तबल की ओर। अस्तबल में पहुँच कर उन्होंने देखा, एक क्षीण प्रकाश है। उसी की छाया में एक स्त्री एक पुरुष के साथ बैठी हुई है। स्त्री पुरुष का मुख देख रही है, और पुरुष वीणा के तारों को झनझनाता हुआ सोते हुये संसार को पागल बना रहा है।

सम्राट अशोक अभी वहाँ पहुँचे ही थे, कि स्त्री दौड़कर उनके चरणों पर गिर पड़ी। स्त्री कौन थी? वही कंचना। उसने अशोक के चरणों से लिपट कर कहा, 'पिता जी, पिता जी, कौन अपराध किया था हम दोनों ने! हाय, आपने हम दोनों की यह दुर्गति की!'

अशोक ने उस स्त्री को ध्यान से देखा और फिर उनके मुख से सहसा निकल पड़ा, 'कौन बेटी कंचना, और तुम कौन! बेटा कुणाल!'

कुणाल ने सितार अलग रख दिया। उसने भी सम्राट

देवदत्त

गौतम का प्रधान शत्रु था, यही देवदत्त, और देवदत्त के साथ गौतम की आत्मीयता भी अधिक थी ।

गौतम थे कपिलवस्तु के महाराज शुद्धोदन के पुत्र । वे जब युवराज 'सिद्धार्थ' के रूप में प्रसिद्ध थे, उनका उनके मामा की कन्या यशोधरा के साथ विवाह हुआ था । उन दिनों उस देश मामा की कन्या के साथ विवाह करने की प्रथा थी । यशोधरा थीं, कोलिराज सुप्रबुद्ध की एक मात्र कन्या । अत्यन्त गुणवती । देवदत्त उन्हीं यशोधरा का जेठा भाई था, और गौतम का भी अपना ममेरा भाई ।

सिद्धार्थ जब बुद्ध का पद प्राप्त करके गौतम बुद्ध के रूप मे देश में पर्यटन करने लगे, तब आनन्द, अनिरुद्ध, इत्यादि राजकुमारों के साथ ही साथ देवदत्त ने भी उनकी शिष्यता स्वीकार करली । देवदत्त दिन रात साधन, योग में निरत रहने लगा । उसने कुछ ही दिनों मे असाधारण क्षमता प्राप्त कर ली । वह इच्छा करने पर ही आकाश मे उड़ने लगा, अनोखे-अनोखे कार्य करने लगा । किन्तु वह स्वभाव का क्रूर था । अपनी इस असाधारण शक्ति का परिचय कभी-कभी वह क्रूरता से दिया करता था । वह बुद्ध से बड़ा होना चाहता था, बहुत बड़ा । अन्त मे वह बुद्ध से अलग होकर एक दूसरे दल की स्थापना के लिये प्रयत्न करने लगा ।

बुद्ध की अवस्था थी, उस समय बहत्तर वर्ष की । उन दिनों भारत के सबसे अधिक शक्तिशाली राजा थे, मगध के बिम्बसार और कोशल के प्रसेनजित । किन्तु वे भी गौतम के शिष्य थे, वे भी उनके चरणों की आराधना करते थे । देवदत्त भीतर

अशोक के चरणों पर गिरते हुये कहा, 'हाँ महाराज, मैं ही, आपका कुणाल !'

अशोक आश्चर्य-चकित हो उठे। उन्होंने दोनों को प्रेम से उठाते हुये कहा, कहो बेटा ! किसने तुम्हारी यह दुर्गति की? किसने तुम्हें इस अवस्था को पहुँचाया ?

आपही ने तो महाराज ! कुणाल ने उत्तर दिया—'आपही ने तो तक्षशिला के राज्यनायक को यह आदेश दिया था, कि मेरी आँखें निकाल ली जायँ।'

अशोक आश्चर्य मे पड़ गये। उनके लिये यह एक रहस्य था, एक पहेली थी। वे इस पहेली का दूसरे दिन पता लगाने लगे। अन्त में उन्हें सब कुछ मालूम हो गया और तिष्यरक्षिता नाचने लगी अपराधिनी के रूप में उनकी आँखों के सामने।

सम्राट अशोक क्रोध से काँप उठे। उन्होंने आदेश दिया, 'तिष्यरक्षिता को जीवित ही भूमि में गाड़ दो !'

किन्तु कुणाल ने महाराज के पैरों पर गिर कर कहा, "नहीं महाराज, क्षमा कीजिये। वे मेरी माता हैं, पूज्या हैं !"

सुनते हैं कुणाल के इस कथन के साथ ही साथ उसकी आँखें फिर लौट आईं, क्यों न हो ? त्याग और उदारता का चमत्कार ऐसा ही होता है !

अजातशत्रु देवदत्त की बातों मे आ गया। वह अस्त्र लेकर स्वयं अपने पिता को मारने के लिये गया, किन्तु लाख प्रयत्न करने पर भी उसके अस्त्र बिम्बसार पर न चल सके। वह विवश हो उठा, और पराजित-सा होकर फिर अपने भवन में लौट गया। अन्त में उसने देवदत्त की ही सलाह से पिता को बन्दी करके भूखों मार डालने की व्यवस्था की थी।

बिम्बिसार मर गया, साम्राज्य का स्वामी हुआ अजातशत्रु। अब तो देवदत्त की पाँचों उँगलियाँ घी मे थीं। अब वह अजातशत्रु की सहायता से गौतम के सर्वनाश की चेष्टा करने लगा।

एक दिन देवदत्त ने अपने साथ लिये, राज्य के पाँच तीरन्दाज! उसका अभिप्राय था, इन तीरन्दाजों की सहायता से गौतम का वध करना, और फिर उन्हें विष देकर स्वयं ही मार डालना। गौतम की मृत्यु का रहस्य भी किसी को न ज्ञात होगा, और देवदत्त बन जायगा, भारत का सर्वश्रेष्ठ धार्मिक नेता।

किन्तु क्या देवदत्त की इच्छा पूर्ण हो सकती थी? नहीं, कदापि नहीं। सत्य के सामने असत्य कैसे टिक सकता था? देवदत्त के तीरन्दाज बुद्ध के पास जाकर, दूर से उनके वक्ष को लक्ष्य कर करके बाण चलाने लगे। किन्तु सब निष्फल, सब व्यर्थ। बाण कुछ दूर जाकर बाण चलाने ही वाले के पास लौट आते थे। देवदत्त की अभिलाषा विफल हुई। किन्तु तीरन्दाज तो आश्चर्य चकित हो उठे। सब के सब धनुष बाण फेंक कर दौड़ कर गौतम के पास गये, और उनके चरणों पर गिर कर अपने अपराध के लिये क्षमा माँगने लगे। गौतम ने उन्हें क्षमा कर दिया, अपना शिष्य बना लिया।

किन्तु क्या देवदत्त अपने षड्यंत्रों का परित्याग कर

ही भीतर जला करता था, ईर्षा की आग में, डाह की ज्वाला में। गौतम को इन नृपतियों की ओर से सब कुछ मिलता था, किंतु देवदत्त को कुछ नहीं। वह भीतर ही भीतर प्रयत्न करता, किंतु सफल न होता निराशा की चोट ही सहता।

बिम्बिसार के पुत्र थे अजातशत्रु। वही मगध के युवराज थे, वही उस बड़े साम्राज्य के एक मात्र स्वत्वाधिकारी थे। देवदत्त ने छलबल से अजातशत्रु को अपने वश में कर लिया, अपना पुजारी बना लिया। उसी ने एक 'विहार' बनवा दिया। बौद्ध सन्यासी जिस घर में रहते हैं, उसी को कहते हैं विहार। अजातशत्रु की कृपा से उस विहार में पाँच सौ सन्यासी रहते और उन्हें प्रतिदिन नियम से भोजन भी मिला करता था। देवदत्त गर्व का अनुभव करता, अभिमान की भावना लाता। उसकी अभिलाषा पूर्ण हुई थी न! फिर अब क्या चाहिये?

देवदत्त के हृदय में अभिमान, ईर्षा की भावना। योग की शक्तियाँ कब तक टिकी रहतीं। योग की शक्तियों के लिये तो चाहिये, हृदय में सात्विकता। देवदत्त की अलौकिक शक्तियाँ नष्ट हो गई। वह पुनः गौतम की शरण में गया। किन्तु गौतम ने उसे उसका प्राचीन पद देने से अस्वीकार कर दिया। उसका हृदय आघात से तिलमिला उठा, और जल उठी अंतर के कोने कोने में प्रबल प्रतिद्वन्द्विता की आग।

देवदत्त मन ही मन सोचने लगा, गौतम के सर्वनाश का उपाय! एक दिन उसने अजातशत्रु से कहा, 'अजातशत्रु तुम्हारे पिता गौतम की बातों को मानकर पथ-भ्रष्ट हो रहे हैं। उन्हीं के साथ-साथ तुम्हारा वह साम्राज्य भी, जिसके तुम उत्तराधिकारी हो, पथ-भ्रष्ट होता जा रहा है। तुम उन्हें मार्ग से हटा दो, सदा के लिये संसार से मिटा दो!'

। था । मार्ग मे जा रही थी, एक असहाय स्त्री । उसकी गोद
एक बच्चा भी था। सहसा उन्मत्त नालगिरि सामने आ
या । उसने सूँड़ बढ़ाकर स्त्री को पकड़ लिया । स्त्री की चीत्कार
ारों ओर गूँज उठी । किन्तु किसमे साहस था, जो 'नालगिरि'
के सामने जाकर मृत्यु का सामना करता ।

दैव की इच्छा ! इसी समय अपने भिक्षुओं के साथ आगये
गौतम ! गौतम आगे बढ़ते हुये 'नालगिरि' के सम्मुख जा
पहुँचे । 'नालगिरि' बच्चे सहित स्त्री को सूँड़ मे लपेटे हुये
ाँखों से आग उगल रहा था । गौतम ने उसे सम्बोधित करते
ो कहा, 'नालगिरि, तू यह क्या कर रहा है ? देवदत्त ने तुझे
ाड़ा है, मेरा सर्वनाश करने के लिये ! आगया तेरे सम्मुख
। । तू इस असहाय स्त्री को छोड़ दे, और मुझे अपने पैरों
े कुचल !'

गौतम की वाणी मे जादू, दैवत्व की शक्ति ! नालगिरि की
ारी उद्दण्डता धूल में मिल गई ! वह स्त्री को छोड़ कर भूमि
पर लोटने लगा, और करने लगा, सूँड़ से गौतम के चरणों
की वन्दना । चारो ओर गूँज उठी, गौतम की जयजयकार ।
हज़ार-हज़ार की सख्या मे लोग दौड़ कर आने लगे, और
देने लगे, 'नालगिरि' को तरह-तरह का उपहार । जिसके शरीर
र जो ही होता, वही उतार कर वह नालगिरि को पहना देता ।
थोड़ी ही देर मे नालगिरि गहनो और कपड़ों से लद गया ।
इसीलिये तो गौतम ने उसका नाम भी बदल कर दूसरा रख
दिया, 'धनपालक ।'

इस घटना के बाद ही चारों ओर यह आवाज़ "देवदत्त
क्रूर है, दुष्ट है ॥" जिसे देखिये वही उसे दुतकार रहा है,
जिसे देखिये वही उसके प्रति घृणा प्रदर्शित कर रहा है । उसके

था ? नहीं, वह बराबर गौतम के सर्वनाश के लिये षड़यंत्रों की सृष्टि करता रहा। एक दिन देवदत्त को पता चला, कि गौतम एक पहाड़ के किनारे किनारे कहीं जा रहे हैं। उसने सोचा इस बार गौतम के सर्वनाश का अच्छा सुयोग उपस्थित हुआ है पहाड़ के ऊपर से बड़े-बड़े पाषाण-खण्डों को गौतम के सि पर गिरा दूँगा। बस फिर क्या ? सदा के लिये उनका अस्तित्व मिट जायगा। देवदत्त ठीक समय पर पहाड़ पर पहुँच गया और जब गौतम नीचे दिखाई दिये, तब वह लगा उनके ऊ बड़े-बड़े पाषाण खंड ढकेलने। किंतु आश्चर्य! गौतम के शरी में कहीं छिलन भी न आई। वे बड़े-बड़े पाषाण खंड गौतम शरीर में जैसे पुष्प की भाँति लग रहे थे।

देवदत्त का यह उपाय भी व्यर्थ गया। किंतु वह निरा न हुआ। वह गौतम के सर्वनाश के पथ पर साहस के सा आगे बढ़ता ही गया, बढ़ता ही गया।

गौतम प्रतिदिन प्रातःकाल राज-पथ से होकर भिक्षा लिये नगर में जाते थे। देवदत्त ने सोचा, 'अजातशत्रु के पा नालगिरि नामक जो भयंकर हाथी है, एक दिन उसको शरा पिला कर राज-पथ पर छोड़ दूँ। हाथी सूँड़ में गौतम लपेट कर पल में कुचल देगा।'

देवदत्त की यह बात गौतम को मालूम हो गई। जिस दि देवदत्त राज-पथ पर हाथी छोड़ने वाला था, गौतम ने अ सभी शिष्यों को भिक्षा के लिये बाहर जाने से रोक दिया किंतु वे स्वयं चल पड़े, अकेले राजपथ की ओर। गौतम को जाता हुआ देखकर उनके आगे आगे शिष्य भी उ ओर चल पड़े। इधर 'नालगिरि' हस्तिशाला से निकल कर और पेड़ों को तोड़ता फाड़ता राज्य-पथ की ओर आगे बढ़ा।

होगा, खाने वाले को नहीं। इसलिये इस सम्बन्ध में भी इस प्रकार का नियम बनाना बहुत ही अनुचित होगा।"

देवदत्त पुनः क्रोधित हो उठा, और वह पुनः गौतम को हानि पहुँचाने के लिये चेष्टा करने लगा। वह लगा करने भ्रमण से गौतम के शिष्यों में प्रचार, 'गौतम पथ-भ्रष्ट है, अधार्मिक है।' देवदत्त की चेष्टा कुछ सफल भी हुई। गौतम के बहुत से शिष्यों ने उनका साथ छोड़ दिया, किन्तु असत्य का प्रभाव कब तक स्थिर रहता? कुछ ही दिनों के पश्चात् वह उड गया, और देवदत्त का हृदय पुन. विपत्तियों के काँटों से चीत्कार कर उठा, विवश बन गया।

उन दिनों गौतम जेतवन में ठहरे हुये थे। देवदत्त फिर चला गौतम के पास! उसके मन में पीड़ा थी, अनुताप था। किसी भिक्षु ने गौतम के पास जाकर कहा, 'महाराज देवदत्त आपकी शरण में आ रहा है!"

'किन्तु उसकी आशा पूर्ण न होगी!' गौतम ने उत्तर दिया—वह इस जीवन में मेरा दर्शन न कर सकेगा!'

हुआ भी यही! देवदत्त अभी जेतवन से कुछ दूर ही था, कि पृथ्वी फट पड़ी, और निकलने लगी, उससे अग्नि की धारा। उसी ने देवदत्त को जला दिया, उसे सदा के लिये संसार से मिटा दिया। देवदत्त चिल्ला रहा था, 'बचाओ, बचाओ, रक्षा करो, किन्तु नरक की यह अग्नि-शिखा जब प्रज्वलित हुई तब फिर बन्द न हुई, बन्द न हुई!!

शिष्यों ने भी उसे छोड़ दिया, उससे अलग हो गये। अजातशत्रु के मन में भी विरक्ति की भावना उत्पन्न हो उठी। उन्होंने भी उसे अपने मन से निकाल दिया, अपनी सारी सहायता बन्द कर दी। वह आपद में पड़ गया, अत्यन्त आपद में। अब न तो उससे कोई बात करता, न उसे भिक्षा देता। भिक्षा के लिये निकलता तो लोग 'दूर रह, दूर रह' की आवाज निकालते, और उसका भिक्षा-पात्र फाड़ कर टुकड़े टुकड़े कर देते।

देवदत्त विवश होकर पुनः गौतम के पास गया। उसने कहा, महाराज! मैं फिर आपकी शरण में आना चाहता हूँ। किन्तु आपको भविष्य में भिक्षुओं के लिये एक नियम प्रचलित करना होगा?

'कौन-सा नियम देवदत्त'—गौतम ने पूछा।

देवदत्त ने कहा, यही, कि भिक्षु श्मशान में परित्याग किये हुये वस्त्र के अतिरिक्त और कोई वस्त्र धारण न करेंगे, और मांस कभी न खायेंगे।

गौतम ने हंसकर उत्तर दिया, मेरे लिये यह असम्भव है देवदत्त! मैं ऐसा नहीं कर सकता। मेरे शिष्यों में अधिकांश सम्भ्रांत और भद्र मनुष्य हैं। उनमें से कोई श्मशान में परित्याग किया हुआ वस्त्र न धारण कर सकेगा। यदि किसी ने धारण भी किया तो वह गृहस्थों के निकट घृणा का पात्र होगा। अ[illegible] मांस की बात। जो लोग भिक्षा के द्वारा जीवन निर्वा[illegible] हैं, उनके भोजन के सम्बन्ध में कैसे कुछ निर्णय कि[illegible] सकता है? भक्तों की श्रद्धा! उन्हें वे जो कुछ भिक्षा [illegible] देंगे, उसे वे प्रसन्न चित्त से ग्रहण करेंगे। यदि कोई अ[illegible] मांस खाने के लिए देगा, तो जीव-हत्या का पाप देने वाले [illegible]

ड़का, उसी शिशु का नाम रक्खा, अहिंसक। उसने सोचा,
ौन जाने, नाम सार्थक हो उठे ?

अहिंसक बढ़ने लगा, धीरे-धीरे वय-प्राप्त करने लगा।
जब पाँच वर्ष का हुआ, तब माता के आशीर्वाद के साथ तक्ष-
शिला मे पढ़ने के लिये गया। बड़ा मेधावी, बड़ा ही तीव्र बुद्धि
वाला। कोई उसकी बराबरी न करता। वह हर एक काम में
सबसे आगे रहता, बहुत आगे। लोग उससे जलते, ईर्षा करते।
एक साधारण पुरोहित का लड़का, इतना मेधावी। पर किसी
का वश क्या था ?

अध्यापक में एक दोष था। वे छिप कर करते थे सुरापान।
क्यों न हो ? यदि राजा को यह बात ज्ञात हो जाती तो राज-
वृत्ति बन्द न हो जाती। उन दिनों यह नियम था, अध्यापक
का चरित्र निर्मल हो, हृदय हर एक प्रकार के दोषों से रहित
हो। एक दिन पाठशाला के लड़कों ने गुरु से कहा, 'गुरु जी,
आपके सुरापान की बात अहिंसक भी जानता है। वह कह
रहा था, मैं राजा के पास जाकर इसकी शिकायत करूँगा।

गुरु चिन्तित हो उठे। सोचने लगे, 'यदि कहीं सचमुच
अहिंसक ने राजा से यह बात कह दी, तो इसमे सन्देह नहीं
कि मैं पाठशाले से अलग कर दिया जाऊँगा। वह राज्य-
पुरोहित का पुत्र है। राजा अवश्य ही उसकी बात का विश्वास
करेंगे, किन्तु नहीं, ऐसा अवसर ही न आयेगा। मैं कौशल
से अहिंसक को दूर कर दूँगा, बहुत दूर !!

एक दिन गुरु ने अहिंसक को अपने पास बुलाया और
कहा, "अहिंसक, मै तुम पर अधिक प्रसन्न हूँ। अतः मैं तुम्हें
एक ऐसी विद्या देना चाहता हूँ, जिसे मैंने आज तक किसी को
नहीं दी है। किन्तु एक शर्त है !"

अहिंसक

आज से बहुत पूर्व की बात है। कोशल के राजा प्रसेनजि[त्] का एक पुरोहित था। नाम था, भार्गव। राजा उसका अधि[क] सम्मान करते, उसके प्रति अधिक भक्ति प्रदर्शित करते। वास्त[व] में था भार्गव सत्य का मूर्ति। राजा के कल्याण की भावना उसकी रग रग में बसी हुई थी। इतना ही नहीं, एक दिन व[ह] राजा के कल्याण के लिये अपने सद्यजात पुत्र का भी वध करने के लिये तैयार हो उठा था।

भार्गव के [illegible] जिस दिन इस पुत्र का जन्म हुआ, राजधानी में अनायास एक हलचल सी उत्पन्न हो उठी। ज्योतिषियों ने कहा, 'यह बालक एक भयानक डाकू होगा। मनुष्य का संहार ही इसका व्यापार होगा।'

भार्गव ने निश्चय किया, वह अपने इस नवजात शिशु को मार डालेगा। उसने राजा के समीप जाकर उससे बातों में भी यह बात डाली।

राजा ने कहा, 'देखना मनुष्य सभी भूल करते हैं। ज्योतिषी भी तो मनुष्य ही हैं। कौन जाने उन्होंने विचार करने में भूल की हो, और फिर मान लो कि यदि यह बालक दस्यु ही हुआ तो क्या राजशक्ति इसका दमन न कर सकेगी? अतएव भार्गव, भूल न करो। इस नवजात शिशु को मार कर अपने साथ ही साथ मुझे भी कलंकित न करो।'

राजा की आज्ञा! भार्गव ने अपने विचार का परित्याग कर दिया। भार्गव की पत्नी मानविका बड़ी प्रसन्न हुई। व[ह] लगी ईश्वर से प्रार्थना—भगवान! मेरे नयनमणि की र[क्षा] करना और इसे अहिंसा की मूर्ति बनाओ। इसीलिये उ

वह कौन सी शर्त है ? गुरु ने कहा, 'बेटा ! तुम्हें एक . मनुष्यों का वध करना होगा, और उनकी एक-एक अँ. काट कर मेरे पास लानी होगी !'

अहिंसक कुछ देर तक सोचता रहा। फिर वह बोल उठा, 'आपकी आज्ञा स्वीकार है गुरु जी !'

अहिंसक पाठशाला छोड़कर चला गया, वन में। वन के भीतर से होकर आठ मार्ग आकर राज पथ में मिलते थे। प्रतिदिन किसी न किसी मार्ग से मनुष्य निकलते ही। अहिंसक एक एक करके सबका वध करने लगा। आठो मार्ग बन्द हो गये। चारो ओर एक हाहाकार-सा फैल गया।

सारा कोशल राज्य सत्रस्त हो उठा, राजा प्रसेनजित भी चिन्तित हो उठे। गुप्तचरों ने आकर यह संवाद दिया, 'दस्यु कोई और नहीं, वही अहिंसक है, राज पुरोहित भार्गव का पुत्र। राजा ने निश्चय किया, वे स्वयं सेना लेकर जायँगे, और अहिंसक का वध करेंगे।'

राजा के निश्चय को भार्गव ने सुना, और उनकी स्त्री ने भी। भार्गव चुप रहा। उसने पुत्र को बचाने के लिये कोई प्रयत्न न किया। किन्तु माता का हृदय। उसमें अशान्ति पैदा हो उठी। उसने मन ही मन स्थिर किया, वह वन में जायगी, और अहिंसक का उद्धार करेगी।

राजा कल प्रातः काल अहिंसक का दमन करने के लिये ससैन्य वन में जायँगे। चारों ओर यह सम्वाद फैल गया। सब प्रसन्न हुये, आह्लादित। किन्तु मानसिका का हृदय चीत्कार कर उठा। उसके अन्तर अन्तर में अशान्ति की एक आँधी सी ... नहीं हुई। वह अर्द्ध रात्रि में उठी, और वन की ओर दौड़

वह कौन सी शर्त है ? गुरु ने कहा, 'बेटा ! तुम्हें एक सहस्र मनुष्यों का वध करना होगा, और उनकी एक-एक उँगली काट कर मेरे पास लानी होगी !'

अहिंसक कुछ देर तक सोचता रहा। फिर वह बोल उठा, 'आपकी आज्ञा स्वीकार है गुरु जी !'

अहिंसक पाठशाला छोड़कर चला गया, वन में। वन के भीतर से होकर आठ मार्ग आकर राज पथ में मिलते थे। प्रतिदिन किसी न किसी मार्ग से मनुष्य निकलते ही। अहिंसक एक एक करके सबका वध करने लगा। आठो मार्ग बन्द हो गये। चारों ओर एक हाहाकार-सा फैल गया !

सारा कोशल राज्य सन्त्रस्त हो उठा, राजा प्रसेनजित भी चिन्तित हो उठे। गुप्तचरों ने आकर यह संवाद दिया, 'दस्यु कोई और नहीं, वही अहिंसक है, राज पुरोहित भार्गव का पुत्र। राजा ने निश्चय किया, वे स्वयं सेना लेकर जायँगे, और अहिंसक का वध करेंगे।'

राजा के निश्चय को भार्गव ने सुना, और उनकी स्त्री ने भी। भार्गव चुप रहा। उसने पुत्र को बचाने के लिये कोई प्रयत्न न किया। किन्तु माता का हृदय। उसमें अशान्ति पैदा हो उठी। उसने मन ही मन स्थिर किया, वह वन में जायगी, और अहिंसक का उद्धार करेगी।

राजा कल प्रातः काल अहिंसक का दमन करने के लिये ससैन्य वन में जायँगे। चारों ओर यह संवाद फैल गया। सब प्रसन्न हुये, आशान्वित। किन्तु मानविका का हृदय चीत्कार कर उठा। उ[illegible] अन्तर अन्तर में अशान्ति की एक आंधी सी उठ खड़ी [illegible] अर्द्ध रात्रि में उठी, और वन की ओर दौड़

चली। वन में चारों ओर निस्तब्धता। वह वन की उसी निस्त-ब्धता को भङ्ग करती हुई रोने लगी, विलाप करने लगी। बेटा अहिंसक कहाँ हो तुम ! आओ, शीघ्र आओ। किन्तु कौन सुनता है, उस वन मे उसकी। व्याकुल आवाज उसके मुख से निकलती थी, और वन की निस्तब्धता से टकरा कर पुनः उसके पास लौट आती थी। वह रोते-रोते मूर्छित हो गई।

कुछ देर के पश्चात् मूर्च्छना भग हुई। उसने आँखे खोल कर देखा, सौम्य मूर्ति-धारी एक भिक्षु। भिक्षु ने कहा, 'तुम कौन हो माँ. मेरे साथ चलो। मैं तुम्हें तुम्हारे घर पहुँचा दूँगा।'

मानविका ने उत्तर दिया, "नहीं भगवन् ! मैं घर न जाऊँगी। मैं जाना चाहती हूँ इस वन मे रहने वाले दस्यु के पास। आप कृपा करके मुझे उसका मार्ग बता दे।"

क्या माँ—भिक्षु ने कहा—किस दुख से तुम दस्यु के हाथों अपने को मृत्यु के मुख मे डालना चाहती हो।

वह दस्यु मेरा पुत्र है भगवन् !—मानविका ने उत्तर दिया—मैं उसे बचाना चाहती हूँ। राजा उसे मारने के लिये कल ससैन्य आ रहे हैं। मेरा अकेला पुत्र राजा की सेना का कैसे सामना कर सकेगा ? वह निश्चय ही मारा जायगा, हाय मेरी आँखों का तारा।'

भिक्षु ने मानविका को सांत्वना देते हुये कहा, "चिन्ता न करो माँ। चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चल रहा हूँ। हम दोनों ही उसे वन से लौटा लाने का प्रयत्न करेगे।"

"नहीं भगवन् !—मानविका ने उत्तर दिया—आप वन मे न जायँ ! वह चाण्डाल आपको मार डालेगा। आज तक, जो कोई उसके सामने गया, सभी मृत्यु के मुख मे चले गये ! मै

अकेली जाऊँगी। मैं उसकी माँ हूँ। मुझे उसकी ममता है। उसे भी मेरी ममता अवश्य ही होगी।"

भिक्षु हँस पड़ा। उसने कहा, "माँ, मैं श्रमण हूँ, संसार के माया-बन्धन को मैं काट चुका हूँ। दूसरों के कल्याण के लिए प्राणों का विसर्जन करना ही श्रमण का कर्त्तव्य है। तुम मेरी चिन्ता न करो। मैं अवश्य ही तुम्हारे साथ चलूँगा।'

मानविका की आँखें सजल हो उठीं। उसने कहा, 'श्रमण रूप में आप मेरे भगवान हैं। मुझे ऐसा ज्ञात हो रहा है, अब निश्चय ही मेरे पुत्र का उद्धार होगा, निश्चय ही वह मृत्यु के मुख में जाने से बच जायगा!'

भिक्षु आगे आगे वन की ओर चला, और उसके पीछे चली मानविका। कुछ दूर जाने के पश्चात् ही कोई गरज उठा, 'कौन है खड़ा वह?' साथ ही साथ एक हृष्ट पुष्ट युवक एक वृक्ष पर से नीचे कूद पड़ा।

"कौन? बेटा अहिंसक! बेटा अहिंसक!!—मानविका चिल्ला उठी, और दौड़ कर उससे लिपट गई, आँखें झरना बन गईं। अहिंसक का वक्षःस्थल आँसू से भीग उठा। वह काँप उठा, केवल एक ही मनुष्य की हत्या करना तो शेष है! फिर क्या उसकी साधना निष्फल होगी? वह प्रलय वेग से माता से छुड़ा कर भिक्षु की ओर झुका और कहने लगा, "श्रमण! तैयार हो जाओ। मैं तुम्हारे प्राणों का वध करूँगा।"

कहने के साथ ही अहिंसक की तलवार उठ पड़ी।

भिक्षु ने कहा, 'आगे मत बढ़ना। तुम जहाँ हो, वहीं खड़े रहो!'

अहिंसक मन्त्र मुग्ध सा स्थिर हो गया। उसके हाथ-पैर मानो स्थिर हो गये! उसे ऐसा ज्ञात हुआ, मानो उसकी सारी

सक]

क विलीन-सी हो गई है। वह आँखों में आश्चर्य भर कर
ज्ञु की ओर क्रन्दनशील बन कर माता की ओर देखता ही
ह गया।

भिक्षु ने कहा, वेटा! तुम क्यों नरहत्या करते हो!
'गुरु के आदेश से!—अहिंसक ने उत्तर दिया—इसके
विना वे मुझे विद्यादान न दे सकेंगे।'

भिक्षु ने प्रेम से अहिंसक के कन्धों पर हाथ रक्खा और
कहा, "वेटा! तुम भूलते हो। हिंसावृत्ति के द्वारा कभी विद्या
प्राप्त नहीं की जा सकती। अभाग्य से तुम ऐसे गुरु के पास
विद्या पढ़ने के लिये गये थे; जिसमें अनेक दुर्गुण थे और उसने
किसी कारण वश तुम्हें अपने स्वार्थ का साधन बनाया है!"

अहिंसक ने दोनो कानों पर हाथ रख कर उत्तर दिया—
"ना, ना, आप ऐसा न कहें! गुरु की निन्दा करना और सुनना
दोनों पाप हैं!"

भिक्षु ने कहा, 'ठीक हैं वेटा! गुरु की निन्दा मैं न करूंगा
मैं देखता हूँ अब भी तुम्हारे हृदय मे ज्ञान की ज्योति है। चलो,
मेरे आश्रम मे चलो। मैं तुम्हें विद्या दूंगा, ज्ञान दूँगा; और
फिर ज्ञान से तुम यह जान जाओगे कि हिंसा बड़ी है, या
अहिंसा!

अहिंसक ने कहा, "बहुत अच्छा, किन्तु पहले आप मुझे
यह बतायें कि मैं आपकी हत्या क्यों नहीं कर सका? मेरे हाथ
क्यों विवश हो गये?"

भिक्षु ने कहा, 'अहिंसक की शक्ति से। जिस दिन तुम
अहिंसक होगे, तुम भी इसी प्रकार शक्तिशाली और वाक्-सिद्ध
बन जाओगे। आओ, तुम अपने माता की आज्ञा लेकर मेरे
आश्रम में आओ।"

मानविका पुत्र में इस प्रकार का परिवर्त्तन देखकर आनन्द से आँसू बहाने लगी। उसने अहिंसक को छाती से लगा कर चूम लिया, और अहिंसक उसे प्रणाम करके भिक्षु के साथ-साथ चल पड़ा उसके आश्रम की ओर।

दूसरे दिन प्रातःकाल कोशलराज ससैन्य वन में गये। उन्होंने चारों ओर अहिंसक की खोज की। किन्तु कहीं उसका पता न लगा। पता कैसे लगे? वह वन में हो भी तो!!

इधर अहिंसक आश्रम में विद्या प्राप्त करने लगा। विद्या से उसकी बुद्धि निर्मल हो गई उसने समझा कि अहिंसा से मनुष्य कितनी शक्ति प्राप्त कर सकता है। पाशविक शक्ति उसके सामने तुच्छ है, अधिक तुच्छ। उसे एक नवीन प्रकाश सा मिला। उस प्रकाश में उसे पशु जीवन की सम्पूर्ण कालिमा स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगी। वह बन गया, नम्र, सब से अधिक नम्र।

एक दिन अहिंसक भिक्षा के लिये बाहर निकला। किन्तु यह क्या? वह जिस द्वार पर भिक्षा के लिये खड़ा होता, वही भय के कारण बन्द कर लिया जाता। वह निराश होकर आश्रम की ओर लौट रहा था। मार्ग में मिला, एक गृहस्थ का घर। उसने उस द्वार पर भी भिक्षा की याचना की। किसी ने भीतर से निकल कर कहा, 'भिक्षा न मिलेगी। गृहस्थ पुत्र मृत्यु के निकट है।'

अहिंसक खाली पात्र लेकर आश्रम में लौट आया। उसने भिक्षु को सारी बातें बता दीं। भिक्षु ने कहा, 'अहिंसक! तुम फिर जाओ उस गृहस्थ के घर। उसके पुत्र की शय्या के पास कहो, 'जब से मैंने जन्म लेकर आज तक कभी जाना

इच्छा से प्राण-हिंसा न की हो तो मेरे पुण्यों के प्रभाव से यह रोगी स्वस्थ हो जाय।'

अहिंसक को अधिक आश्चर्य हुआ।

उसने कहा, "यह कैसी बात भगवन! मैंने तो सैकड़ों मनुष्यों का वध किया है।"

"किया होगा—भिक्षु ने कहा—तुम उस समय एक साधारण मनुष्य थे, किन्तु इस समय भिक्षु, और उस पर भी नवजीवन प्राप्त। जाओ, आज तुम्हारी परीक्षा का दिन है!"

अहिंसक पुनः उस गृहस्थ के घर गया। उसने रोगी की शय्या के पास खड़ा होकर कहा—'यदि मैंने कभी अपनी इच्छा से प्राणी हिंसा न की हो तो यह रोगी स्वस्थ हो जाय।'

आश्चर्य! वाक्य समाप्त होने के साथ ही साथ रोगी उठ कर बिछौने पर बैठ गया। मानो वह सोया हुआ था। अहिंसक अवाक् हो उठा—'क्या कभी एक अधम व्यक्ति से यह कभी सम्भव हो सकता है, ना ना। यह गुरु की कृपा है। अहिंसक सोचते-सोचते आश्रम में आया।"

भिक्षु ने उसे सांत्वना देते हुए कहा, अहिंसक आश्चर्य मत करो। यह सब कुछ सम्भव है। इस समय तुम्हारा पुनर्जन्म हुआ है। आज तुम्हारा माता का दिया हुआ अहिंसक नाम सार्थक हुआ, तुम वास्तव में अहिंसक हो, अहिन्सा की मूर्ति हो।

शरणार्थी के लिये

रणथम्भोर का दुर्ग। महाराणा हम्मीर सभा के मध्य में राज सिंहासन पर विराजमान थे। सैनिक-सामन्त भी अपने अपने स्थान पर बैठे हुए थे। चल रही थी राजकाज की बातें। सहसा द्वारपाल ने आकर निवेदन किया,—"महाराज, एक यवन आया है। आपसे मिलना चाहता है।'

'यवन! हम्मीर ने आश्चर्य-चकित होकर कहा—आने आने दो!'

सब की दृष्टि द्वार की ओर लग गई। यवन! वह क्यों आया है? कहाँ से आया है? क्या कहीं से संग्राम का सम्वाद लाया है? लोगों के मन में उठ रहे थे यही विचार। यवन ने महाराणा के सम्मुख पहुँच कर नम्रता से सिर झुकाया, और कहा, 'महाराणा की जय हो!'

"तुम कौन हो भाई! महाराणा ने पूछा—कहाँ से आये हो, और क्या चाहते हो?"

यवन की आँखें सजल हो उठीं। उसने उन्हीं सजल आँखों में दीनता भर कर कहा, "महाराज! मैं दिल्ली सम्राट अला-उद्दीन का एक दरबारी हूँ। मेरा नाम है मेहमाशाह। सम्राट ने मुझे दरबार से निकाल दिया है, और दी है प्राण दण्ड की आज्ञा। मेरी रक्षा कीजिये महाराज! मैं आपकी शरण में आया हूँ!'

महाराणा कुछ देर के लिये विचार मग्न हो गये।

मेहमाशाह ने पुनः आँखों में दीनता भर कर कहा, "क्या मुझे आश्रय न मिलेगा महाराज?"

"मिलेगा !—महाराणा ने अपनी गम्भीर आकृति को ऊपर
ठा कर कहा—तुम यहाँ रहो और रहो निर्भय चित्त से !
तुम्हारा··· !"

महाराणा की बात समाप्त भी न हो पायी थी कि मंत्री बीच
ही मे बोल उठे, "किन्तु महाराज !"

महाराणा ने मंत्री की ओर देखा और कहा, किन्तु क्या
मंत्री जी ! कहिये, कहिये आप चुप क्यों हो गये ? आप न
कहेंगे। अच्छा मैं ही आपकी बात पूरी किये देता हूँ। आपको
भय है, कहीं दिल्ली-सम्राट अलाउद्दीन इस कार्य से विक्षुब्ध
होकर रणथम्भोर के दुर्ग पर आक्रमण न कर दें। क्यों, यही
न मंत्री जी ?

हाँ महाराज !—मंत्री ने सिर कुछ ऊपर उठाकर कहा।

किन्तु मंत्री जी !—महाराणा ने गर्व के साथ कहा—आप
यह क्यों भूल जाते हैं कि मैहमाशाह शरणार्थी है। शरण मे
आये हुए को शरण देना और उसके लिये अपना सर्वस्व उत्सर्ग
कर देना ही मानव जगत का सर्वश्रेष्ठ धर्म है। फिर क्या मैं
दिल्ली सम्राट से भयभीत होकर अपने धर्म को छोड दूँ ? नहीं
मंत्रीजी, नहीं, यह मुझसे न हो सकेगा ! मैं मनुष्य हूँ। मनुष्यों
मे राजपूतों की तलवार की छाया मे नीचे जो आया, उसके
लिए राजपूत अपने प्राणों की बाजी लगा देते हैं।

सारी राज-सभा सन्न हो उठी। मंत्री का मस्तक नत हो
गया, और मैहमाशाह दरबार मे रहने लगा।

एक वर्ष के बाद। राजसभा मे दिल्ली-सम्राट अलाउद्दीन
का दूत खडा था। वह कह रहा था, महाराणा से सम्राट का
सन्देश 'मैहमाशाह सम्राट का अपराधी है, उसे सम्राट के पास